अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-19, 16-31 मई, 2015

यह अंक एक चेतावनी है

- अश्वमेघ का घोड़ा है
  भूमि अधिग्रहण अध्यादेश
- संघर्षों की विरासत
  छात्र युवा संघर्ष वाहिनी

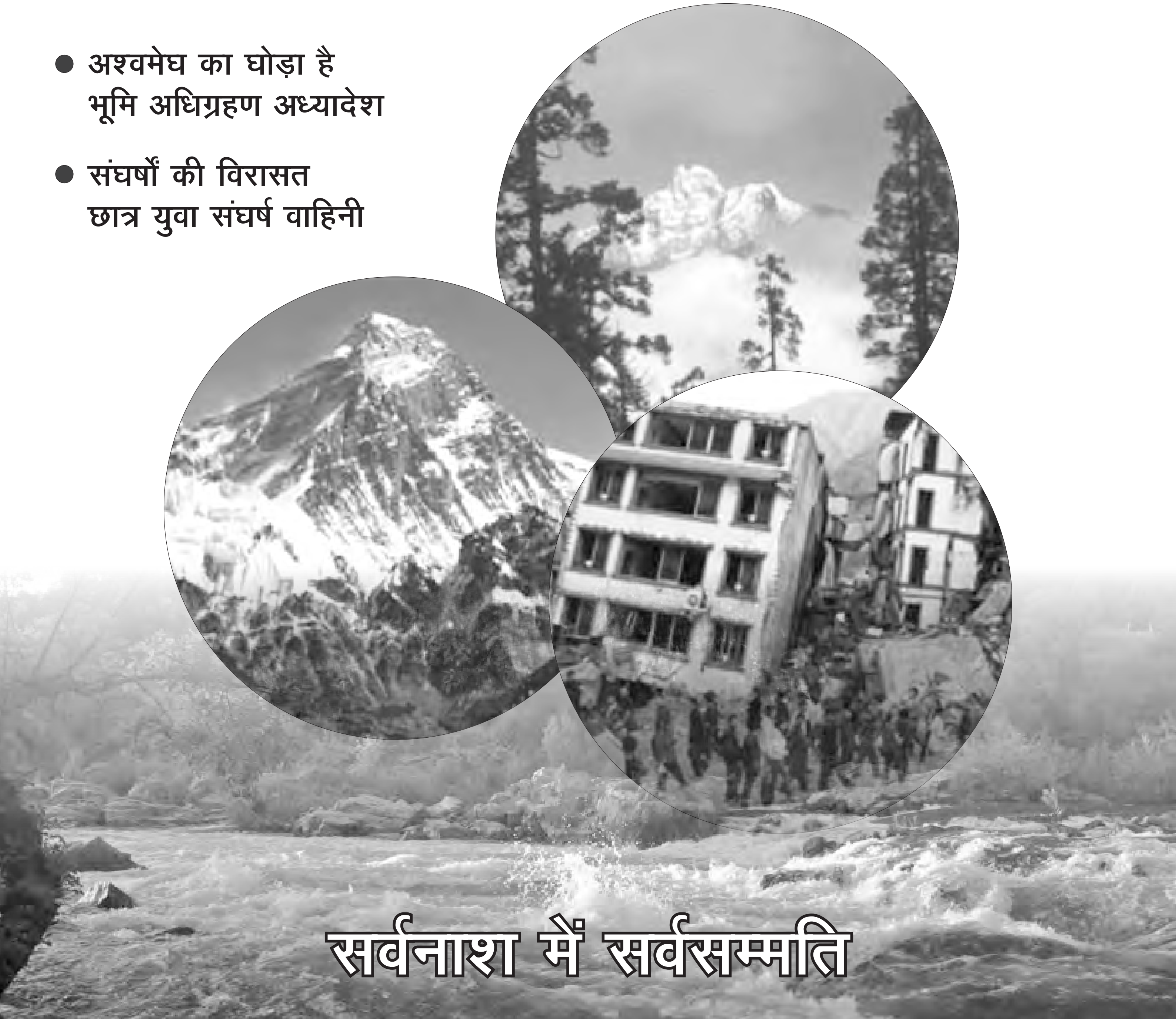

सर्वनाश में सर्वसम्मति

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र

सर्वोदय जगत

सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 38, अंक : 19, 16-31 मई, 2015

संपादक — **बिमल कुमार**, मो. : 9235772595

कार्यकारी संपादक — **अशोक मोती**, मो. : 7080882866

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर 'कुसुम'**
बिमल कुमार **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 38350201000431O
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. संपादकीय : जमीन का सवाल... 2
2. एक चेतावनी है... 3
3. तेरह साल के बाद... 4
4. संघर्षों की विरासत छायुसं वाहिनी... 6
5. सर्वनाश में सर्वसम्मति... 8
6. भूमि अधिग्रहण अध्यादेश... 10
7. अश्वमेघ का घोड़ा है भूमि अधिग्रहण...11
8. आदिवासियों को विशेषज्ञों से बचायें... 12
9. मत पियो या कम पियो... 14
10. पर्यावरण से प्रतिद्वंद्विता... 16
11. अपनी भूमि पर बेघर आदिवासी... 17
12. गतिविधियां एवं समाचार... 19
13. कविता : लौटा दो उनका उनके... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

संपादकीय

जमीन का सवाल एवं गांव

भूमि अधिग्रहण का सवाल जिस प्रकार आज विमर्श में है, उसमें से एक बुनियादी प्रश्न गायब है। वह है गांव के अस्तित्व का और गांव की स्वावलंबी अर्थ-व्यवस्था, समाज व्यवस्था का। भूमि अधिग्रहण बिल के विरोधी केवल दो मुद्दों पर जोर दे रहे हैं। एक तो यह कि 80 या 80 प्रतिशत किसानों की सहमति होनी चाहिए तथा दूसरे सामाजिक प्रभाव का आकलन (Social Impact Assessment) होना चाहिए।

अगर उद्योगों के लिए जमीन चाहिए तो सबसे पहले ग्रामीण उद्योगों के लिए जमीन होनी चाहिए। अर्थात् उद्योग के नाम पर इस्तेमाल होने वाली भूमि ग्राम की समृद्धि का माध्यम होना चाहिए तथा ग्राम समुदाय का अभिन्न अंग होना चाहिए। जिस जमीन के अधिग्रहण से ग्रामोद्योग नष्ट हों, ग्राम समुदाय कमजोर हो तथा ग्राम स्वराज्य को ग्रहण लगे, उस प्रकार का भूमि अधिग्रहण कानून स्वीकार्य नहीं होगा।

यहां इस बात को स्मरण रखना होगा कि अतीत काल से अब तक दुनिया की तमाम सभ्यताएं नष्ट हुईं किन्तु भारत की सभ्यता की निरंतरता बनी रही। तमाम आक्रमणकारियों के बावजूद बनी रही। इसका एक कारण यह था कि दुनिया की अन्य सभ्यताएं धीरे-धीरे नगर केन्द्रित व नगर नियंत्रित होती गयी थीं। जबकि भारतीय सभ्यता के केन्द्र से ग्रामीण समुदाय का निष्कासन कभी नहीं हुआ। यदि भारतीय सभ्यता में भी ग्रामीण समुदाय को नष्ट करने के बीज डाल दिये जायेंगे, तो भारतीय सभ्यता भी नष्ट हो जायेगी।

ग्रामीण समुदाय के संदर्भ में जब हम ग्रामोद्योग की बात करते हैं, तो उसमें एक बात निहित होती है। वह यह कि ग्रामीण समुदाय का श्रम, ग्रामीण समुदाय के संसाधन व प्रकृति प्रदत्त स्रोत इनके सहयोगी के रूप में पूंजी की भूमिका होगी। अर्थात् पूंजी की यह भूमिका नहीं होगी कि श्रम व संसाधन उसके अधीन हो जायें। भूमि-अधिग्रहण कानून के माध्यम से यही सुनिश्चित किया जाता है कि श्रम व संसाधन पूंजी के अधीन हो जायेंगे।

ग्राम समुदाय के दायरे के बाहर भी प्रांत स्तर पर या राष्ट्रीय स्तर पर पूंजी को श्रम का एवं संसाधनों का सहयोगी बनाना होगा। अर्थात् श्रम व संसाधनों का प्रांतीय व राष्ट्रीय स्वरूप क्या होगा, इसका विकास करना होगा और तभी इन स्तरों पर भी श्रम, संसाधनों एवं पूंजी का सहयोगात्मक स्वरूप बनाया जा सकेगा।

आज हमारे पास केवल पूंजीवादी मॉडल है, जिसमें श्रम एवं संसाधनों को पूंजी के अधीन बनाया गया है और इस प्रक्रिया का संपादन पूंजीवादी बाजार के माध्यम से होता है।

इस संदर्भ में देखें तो भूमि अधिग्रहण की नीतियों के विरुद्ध चलने वाले आंदोलनों को सभ्यताओं के संघर्ष के रूप में व नये समाज के निर्माण के आंदोलन के हिस्से के रूप में खड़ा करने की आवश्यकता है। गांधी, विनोबा एवं जेपी के नेतृत्व में चले आंदोलनों के मूल में इन तत्त्वों की प्रचुरता थी। इसी विरासत को आगे बढ़ाते हुए, भूमि अधिग्रहण नीतियों के विरोध के आंदोलन को ग्राम-स्वराज्य के आंदोलन का हिस्सा बनाना होगा।

बिमल कुमार

यह अंक

एक चेतावनी है

यह एक विषम स्थिति है, जब कोई हमारे सामने खतरा भी पैदा करे और चेतावनी भी दे। पूंजीवाद ने हमें और प्रकृति को बिलकुल आमने-सामने खड़ा कर दिया है। इस तरह हम कह सकते हैं कि मनुष्य को आज सबसे बड़ा खतरा पूंजीवाद और प्रकृति से है और चेतावनी भी। आज सामाजिक पर्यावरण की तरह प्राकृतिक पर्यावरण भी मानवता को प्रभावित कर रहा है और पूंजी हमारी राजनीति, अर्थनीति और संस्कृति भी निर्धारित करने लगी है।

गांधी ने कहा, 'प्रकृति मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्ण सक्षम है, अत्यधिक लोभ की पूर्ति के लिए नहीं।' मनुष्य के अत्यधिक लोभ ने पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़कर रख दिया है और खुद अपनी जान को जोखिम में डाल लिया है। निःसंदेह इस असंतुलन का मुख्य कारण जल-जंगल-जमीन पर आधिपत्य की होड़ और उसका दोहन है। इसलिए इस अंक में हमने भूमि, भू-क्रांति, भूमि पर आधिपत्य के लिए बनाये जा रहे कानून, वैश्विक स्तर पर जनसंख्या वृद्धि और उसका पर्यावरण पर पड़ रहे असर पर विमर्श करने की कोशिश की है। ग्लोबल वार्मिंग और प्रदूषण की मार के जनक तो हम ही हैं।

हिमालय की चोटियां, जो हर मौसम में वर्फ से ढँकी रहती रही हैं, आज ये चोटियां वर्फ से ढँकी नहीं मिलतीं। यही कारण है कि हमने लद्दाख, कोसी, केदारनाथ और कश्मीर में आपदाओं को झेला और उससे जो नुकसान हुआ है, उसका सही आकलन भी हम नहीं कर पा रहे हैं। कुछ दिन पूर्व भूकंप से नेपाल में हुई तबाही ने हमें झकझोर कर रख दिया है। हिमालय क्षेत्र में घटती वन-संपदा, समतल भूमि से लेकर पहाड़ की चोटियों तक बन रही इमारतें, बड़े पुल और पृथ्वी पर जनसंख्या का दबाव से वातावरण में कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा अधिक बढ़ी है और जिसके कारण जलवायु में परिवर्तन होता है और इसलिए ऐसी आपदाएं आती हैं।

विश्व में बढ़ रही जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए गोपनीय ढंग से जो काम चल रहा है शायद हम उससे वाकिफ नहीं हों, जिसके तहत विश्व की आबादी को आधे से कम करने का प्रयास जारी है। विश्व में एक नई व्यवस्था विश्व के कुछ धनकुबेरों द्वारा कायम करने की पुरजोर कोशिश हो रही है। यदि हम पूरी ताकत और पूरी सोच से इसके विरुद्ध खड़ा नहीं होते और खुद अपने में परिवर्तन नहीं करते तो निःसंदेह यह प्राणीमात्र के जीवन और मरण का प्रश्न है। आज पूंजीवाद पानी को बोतल में बेच रहा है, ऐसा न हो कल वह धूप और हवा को भी बेचने लग जाय, जो मनुष्य के लिए एक चेतावनी है।

–कार्यकारी संपादक

संपादकीय : लंदन टाइम्स
14.04.1953

भूदान आंदोलन की संभावनाएं

''करीब दो साल पहले आचार्य विनोबा भावे ने तेलंगाना में भूदान-आंदोलन शुरू किया। गांधीजी सामाजिक अन्यायों के निराकरण के लिए मानवता के जिन सार्वत्रिक तत्त्वों का आवाहन किया करते थे, उन्हीं तत्त्वों का आवाहन करके हिन्दुस्तान के तीन या चार करोड़ भूमिहीन किसानों को सहायता पहुंचाने का यह प्रयास है। जिनके पास जमीन है, उनमें भूमिहीनों को जमीन देने की प्रेरणा पैदा की जाती है। इसमें केवल दान की भावना नहीं है। आज की समाज-रचना पर यह जिम्मेवारी है कि वर्तमान अन्यायपूर्ण अर्थ-व्यवस्था का वह निराकरण करे। इस अन्याय के निराकरण का संकेत मालिकों के भूमिदान में है। पहले यह आंदोलन दक्षिण में फैला। अब उत्तर में फैल रहा है। दस लाख से अधिक एकड़ जमीन मिल चुकी है। अंतिम उद्देश्य यह है कि हरेक भूमिहीन किसान के पास अपनी जमीन हो। इतने विशाल पैमाने पर जो मोर्चा शुरू हो गया है, उसको देश के सहकारी आर्थिक संयोजन में विचारपूर्वक स्थान मिलना चाहिए। इस आंदोलन में महान् संभावनाएं निहित हैं। उसे जो प्रत्यक्ष सफलता मिली है, वह कम प्रभावोत्पादक नहीं है। इसके अलावा भूमिहीनों में जिस कटुता के कारण क्षोभ पैदा हो रहा है, उस कटुता की तीव्रता भी इस आंदोलन से कम हो सकती है। इनमें से जो गरीब हैं—और इन्हीं की संख्या ज्यादा है—उनको मौजूदा भूमि-सुधार कानूनों से कुछ फायदा तो हुआ है, लेकिन इस नये किसान-मालिक को पुराने मालिकों का जो मुआवजा देना होता है, उसका बोझ इतना अधिक है कि जिन लोगों को जमीन खरीदने का ज्यादा-से-ज्यादा जरूरत है, वे उसे खरीद नहीं पा रहे हैं। उनमें कटुता बढ़ रही है। उनके लिए भी भूदान-आंदोलन आशा का संदेश है। जो भावनाएं भारतीय हृदय में गहरी पैठ गयी हैं, उन भावनाओं के अनुरूप यह आंदोलन है। ऐसा कोई गरीब आदमी नहीं है, जिसके मन में इस राष्ट्रीय परंपरा के लिए आदर न हो, कि जो संपत्तिमान् हैं और बड़े आदमी हैं, आत्मबलिदान उनका कर्तव्य है। गांधीजी ने दलित और शोषित जनता के हित में शक्तिशाली लोगों के खिलाफ जिस नैतिक दबाव का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया, उस अस्त्र से जनता परिचित है, और उस पर भरोसा भी रखती है।'' ❑

भू-क्रांति

तेरह साल के बाद...

❑ विनोबा

अप्रैल 1951 में ईश्वरीय प्रेरणा से विनोबा की भूदान-यात्रा दक्षिण भारत से प्रारम्भ हुई और बाद में इसका प्रसार उत्तर भारत में हुआ। मुख्य रूप से बिहार के बोधगया को विनोबा ने भूदान-यज्ञ आंदोलन का एक सघन क्षेत्र बनाया, जहां भूदान के लिए जयप्रकाश नारायण जैसे वरिष्ठ नेता ने अपने जीवन-दान की घोषणा की।

पूज्य विनोबा द्वारा वर्ष 1964 में लिखित यह आलेख '13 साल के बाद' (संकलित) में संत विनोबा की अन्तःस्थिति और उनके उद्‌गार निम्नवत् व्यक्त हुए—"अब मेरे अन्दर न प्रवृत्ति की प्रेरणा है, न निवृत्ति की। न यश की चाह है, न अपयश का डर। न मुक्ति की आकांक्षा है, न जीवन की आसक्ति। जैसा वह चाहेगा, हमारा इस्तेमाल करेगा।"

–कार्य. सं.

मेरे मन में दो विचार-प्रवाह चलते हैं। अगर कोई एक चलता तो मेरे लिए सरल हो जाता। दो इसलिए चलते हैं कि **मेरे जीवन पर दोनों विचारों का असर हुआ है। एक तो वह, जिसे मैं आत्मज्ञान का प्रवाह कहता हूं। उसका असर बचपन से ही है। दूसरा प्रवाह, जिसे मैं विज्ञान का नाम देता हूं। यह विचार अधिकतर मुझे गांधीजी से मिला है। लेकिन गांधीजी में वेदांत-विचार भी आता है, अतः इसे गांधी-विचार नाम न देकर विज्ञान-विचार ही कहूंगा।**

पहला प्रवाह हमेशा निवृत्ति की ओर खींचता है। काम न करना निवृत्ति नहीं है। काम न करना भी काम करने की तरह एक वृत्ति है। निवृत्ति में दोनों से मनुष्य अलग हो जाता है। और वह मुझे हमेशा आकर्षक लगता है तथा मेरा विश्वास है कि उसमें ताकत है।

पारमाणविक शक्ति सूक्ष्म है और विस्फोट से वह प्रकट होती है। वैसे ही आत्मशक्ति है। वह सब शक्तियों से भिन्न है। सबकी सब शक्तियां उसी में हैं, भले ही वह पूरी प्रकट न हो। जीवन में वही काम आती है। जीवन उसी के साक्षीस्वरूप स्पर्श से ही चलता है। जाने-अनजाने हर एक के जीवन में उसका स्पर्श रहता है। जब उसका दर्शन होता है, तब उसका स्फोट होता है। आत्मज्ञान की वह प्रक्रिया मुझमें है। सृष्टि में भी वही शक्ति हैं उसे जितना मौका देते हैं, अच्छा है।

तो जो निवृत्ति का प्रवाह है, उसका असर मुझमें दीखता है। मेरी एक वैचारिक भूमिका है। उसी पर मैं खड़ा हूं। जरा लोगों से अलग हुआ, तो उसी पर पहुंच जाता हूं। मेरी भूमिका मुझे कहती है कि बस, 'कैवल्यस्वरूप' होकर ही अब (1957) मुझे घूमना चाहिए। नदी की तरह तू समुद्र में पहुंच जा। स्वाभाविक कर्म कर। जिस तरह नदी अपनी ओर से कुछ नहीं करती, दूसरे जैसा चाहते हैं, वैसा ही वह करती है, उसी तरह मैं चलूं। कहीं भी जाऊं, उसी कैवल्यस्वरूप की भूमिका से ही जाना चाहिए। केवलस्वरूप बनना मेरे लिए स्वाभाविक है। यह वेदांत का विचार है।

दूसरा जो विज्ञान-विचार है, वह विज्ञान के इस जमाने में प्रकट हुआ है। वह कहता है कि साधना सामूहिक ही हो सकती है। एकांत जैसी साधना मनुष्य के लिए है नहीं। मनुष्य स्वयं एक समूह है। इसलिए 'मेरी' मुक्ति कहना गलत है। जहां 'मैं' है वहां मुक्ति नहीं और जहां मुक्ति है वहां 'मैं' नहीं। एक देह में नहीं, सब देहों में 'मैं' हूं, अतः साधना यानी सामूहिक साधना।

पहले के जमाने में सामूहिक साधना एकांत में सबको मान करके की जाती थी। अर्थात् अपने में समाज की धारणा करना। लेकिन आज विज्ञान के जमाने में सामूहिक साधना के लिए समूह भी अपेक्षित है। सामूहिक प्रश्न को उठाकर ही साधना करनी चाहिए, यह गांधीजी का विचार है। गांधी स्वयं विज्ञान-विचार की देन हैं, ऐसा मैं मानता हूं; क्योंकि उन्होंने अपनी आत्मकथा को भी 'प्रयोग' नाम दिया। आज तक किसी ने ऐसा नहीं किया। जिसने अपनी आत्मकथा को भी 'सत्य के प्रयोग' नाम दिया, वह विज्ञान-विचार की ही तो देन हो सकता है।

उनके जाने के बाद भी मैं शोध में ही लगा था, पर देखता था कि अहिंसा तो गायब हो रही है। जिनका अहिंसा पर विश्वास नहीं था, उनकी बात मैं नहीं करता, लेकिन श्रद्धा वालों के कार्यक्रम में भी उसका स्थान नहीं था। मुझे एक के बाद एक चीज उठानी पड़ी। **तेलंगना में प्रथम दान का जो असर मुझ पर हुआ, उसे मैं टाल नहीं सका। मुझे कोई आदेश दे रहा है, ऐसा मुझे लगा। मैं उसका विरोध कर रहा हूं और वह मुझे आदेश दे रहा है!! अंदर से ऐसा खिंचाव हुआ कि वह टल नहीं सका।**

आज देश में वास्तविक शांति नहीं है। कोई भी छोटे-बड़े कारण को लेकर हिंसा

भड़क उठती है। उसका तुरंत उपाय करना चाहिए, ऐसी तीव्रता मुझे महसूस होती है।

फिर भी जमीन की मालिकी यदि दो सौ साल में भी मिट गयी, तो बहुत जल्दी मिटी, ऐसा मानकर उतना धीरज मैं रख सकता हूं। पर विज्ञान की तरफ से शीघ्रता है। आपको उतना समय मिले, तब तो? विज्ञान हमसे त्वरा करवा रहा है। **त्वरेत् कल्याणम्**— इस तरह मेरा दूसरा प्रवाह कहता है। एकांत में बोया बीज कभी-न-कभी उगेगा, यह मैं मानता हूं; पर त्वरा की कीमत हमें पहचाननी चाहिए। *(16-1-1958)*

जब मैंने महाराष्ट्र में प्रवेश किया, तब मैंने कहा था कि मैं यहां न ग्रह रखकर आया हूं, न आग्रह रखकर आया हूं। मैं निरपेक्ष होकर आया हूं और निरपेक्ष काम करूंगा। कई दफा यहां कार्यकर्ताओं को मुझे सावधान करने की जरूरत पड़ती कि बाबा, आज आप जरा ग्रामदान पर बोलिए! क्योंकि उनको भरोसा नहीं था कि बाबा ग्रामदान पर ही बोलेगा।

तेरह साल के बाद मेरा यह रुख हुआ है। पहले से ही ऐसा रुख होता, तो मुझे महावीर की पद्धति से काम करना पड़ता, और वास्तव में मुझे वही पद्धति अधिक पसंद है। परंतु मुझे कुछ गांधीजी का आकर्षण है। किसी समस्या को लेकर ही तत्त्व-प्रचार करना, यह बापू का दर्शन था। और यही मैंने गौतम बुद्ध में देखा। इसलिए मेरे मन में हमेशा बुद्ध और महावीर के बीच तुलना चलती रहती है। मेरा आंतरिक झुकाव महावीर की ओर है। तटस्थ रहकर समझाना। महावीर ने ऐसा ही किया था।

महावीर के 40 वर्षो के बाद गौतम बुद्ध हुए। दोनों का संचार एक ही प्रदेश में, बिहार में हुआ। इसलिए संभव है बुद्ध ने महवीर स्वामी को देखा भी हो।

बुद्ध और महावीर भारतीय आसमान के दो उज्ज्वल नक्षत्र हैं। गुरु-शुक्र के समान तेजस्वी और मंगल-दर्शन। बुद्ध का प्रकाश दुनिया भर में फैला। महावीर का प्रकाश हृदय में गहराई तक पहुंचा। बुद्ध ने मध्यम मार्ग सिखाया, महावीर ने मध्यस्थ दृष्टि दी। दोनों दयावान और अहिंसाधर्मी थे। बुद्ध बोधप्रधान थे, महावीर वीर्यवान तपस्वी थे। पर दोनों कर्मवीर थे।

विचार-प्रचार की दो पद्धतियां हैं— सालंबन और निरालंबन। भगवान बुद्ध ने अहिंसा के प्रचार के लिए यज्ञ-बलिनिषेध का आलंबन लिया और प्रचार किया। महावीर ने विचार-प्रचार के लिए कोई आलंबन नहीं लिया। वे केवल शुद्ध अहिंसा का उपदेश देते रहे। उसके लिए निरंतर तप करते रहे और उसी में संतुष्ट रहे। महावीर की भूमिका बड़ी ऊंची थी। उनकी करुणा निर्गुण थी। महावीर का तरीका यह था कि वे लोगों से बात करते थे, कोई मसला हाथ में है, कोई विचार फैलाना है ऐसी उनकी दृष्टि नहीं रहती। वे सामने वाले का विचार समझ लेते और उसके जीवन में समाधान हो, ऐसी राह उसे दिखाते थे। हर एक के लिए अलग-अलग राह दिखाते थे। जिसकी जिस ग्रंथ पर श्रद्धा हो, उसी ग्रंथ के आधार से समझाते और जिसकी किसी भी ग्रंथ पर श्रद्धा न हो तो उसे बिना ग्रंथों के ही समझाते। इस तरह वे अहिंसा का मूलभूत विचार मध्यस्थ दृष्टि रखकर समझाते।

तो, मेरा अपना झुकाव महावीर की ओर है, और मैंने काम चलाया है गांधीजी के कारण गौतम बुद्ध के तरीके से। अब मुझे यह जरूर लग रहा है कि तेरह साल के बाद यह कार्य मेरा क्यों रहना चाहिए? और मुझे लगता है कि ये छोटी-छोटी चीजें जो आज हैं, कल नहीं। हर हालत में किसी भी तरह वह सुलझने वाली हैं। वे क्षणिक हैं। उसमें वाणी का बहुत ज्यादा उपयोग करना मुझे अंदर से जंचता नहीं।

मेरा यह बुनियादी विचार है कि सद्‌विचार को हवा में फैला देना अच्छा है। सद्‌विचार जब जमीन में बोया जाता है तब वह उगता है, उसका वृक्ष बनता है, उसकी लोगों को छाया मिलती है। परंतु उस छाया में चंद लोग ही आकर बैठ सकते हैं। वह सीमित हो जाता है। उसका भी उपयोग होता है। परंतु जो विचार हवा में फैलता है, वह हर एक हृदय को छूता है और कहां का कहां चला जाता है!

इसलिए भूदान-यात्रा की 13 साल की समाप्ति पर मैं विचार कर रहा था कि अब से मैं मौन रखूं और विचार आगे बढ़ता जाये। वैसे तेरह साल से बोल ही रहा हूं। केवल व्याख्यानों का हिसाब करना हो तो, दिन में तीन दफा बोलना, इस हिसाब से तेरह हजार व्याख्यान हुए। दूसरी जो अनेक चर्चाएं हुईं, उनकी तो गिनती ही नहीं! उस हालत में कुछ अंतर में जाऊं, थोड़ा वाणी का उपयोग कम करूं, ऐसा मुझे जरूरी लगा। स्वामी विवेकानंद ने एक जगह कहा है कि, **''अमेरिका में मैं बहुत बोला, उसके बाद मेरी समाधि उतनी सुलभता से नहीं लग सकी, जितनी पहले लगती थी।''** इसलिए उस दृष्टि से उन्होंने फिर से साधना की। ऐसा अनुभव तो मुझे नहीं आया। लेकिन अखंड बोलने के बाद स्वाभाविक इच्छा हुई कि अब कुछ नया दर्शन होना चाहिए।

इसलिए आजकल मैंने मौन रखा है और मैं कुछ ऐसा चिन्तन कर रहा हूं कि हमारे कार्यकर्ताओं में परस्पर अनुराग स्थापित हो। हम विश्वशांति की भाषा बोलते हैं, तो हममें अन्यन्य अनुराग होना चाहिए। परस्पर द्वेष होगा तो काम नहीं होगा। थोड़ा ध्यान किया जाये, चित्त को नियंत्रित रखा जाये और अनेक पुराने विचार, भूत-स्मरण विस्मृत कर दिये जायें। ऐसा होने पर फिर मनुष्य ताजा हो जायेगा। उसमें प्रेमवृद्धि होगी और फिर अपार काम हमारे हाथ से होगा। ❑

काल-खण्ड

संघर्षों की विरासत छायुसं वाहिनी

❑ अशोक मोती

जेपी से संबद्ध युवा संगठन, छात्र युवा संघर्ष वाहिनी, जिसका जन्म 1974 आंदोलन के गर्भ से हुआ था, उसकी सोच आज से 36 वर्ष पूर्व राष्ट्र और राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति क्या थी, वह आज की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों में कितना प्रासंगिक है, इसका निर्णय पाठक स्वयं यहां कर सकेंगे, ऐसी आशा है। **–कार्य. सं.**

8 अप्रैल 1979 को पटना में छात्र युवा संघर्ष-वाहिनी की ओर से एक विशाल जुलूस निकाला गया जो शहर के मुख्य मार्गों से गुजरता हुआ सायं 5 बजे गांधी मैदान में एक सभा में परिवर्तित हो गया। सभा की समाप्ति के बाद प्रतिनिधि मंडल ने बिहार के मुख्यमंत्री को एक आठ सूत्री मांग-पत्र दिया, जिसमें से कुछ मांगें केन्द्रीय एवं कुछ राज्य सरकार से संबंधित थीं, प्रतिनिधि मंडल ने यह भी कहा कि अगर सरकार इन मुद्दों पर अविलंब गंभीरतापूर्वक विचार नहीं करती तो वे शांतिमय संघर्ष करने को बाध्य होंगे। स्मरणीय है कि पांच वर्ष पहले इसी दिन लोकनायक जयप्रकाश के नेतृत्व में एक ऐतिहासिक मौन जुलूस निकला था जिससे देश के छात्रों, युवाओं को एक दिशा मिली थी।

दुर्भाग्यवश आंदोलन के बाद व्यवस्था परिवर्तन के सवाल को उठाने वाले युवक पुनः उसी राजनीतिक घेरे में लौट गये। देश की सारी राजनीति तानाशाही के समर्थन और विरोध में सिमट कर रह गयी। सत्ता की राजनीति के आगे आर्थिक एवं सामाजिक सवाल भी मौन होते जा रहे हैं। इसलिए बिहार के कुछ युवक संगठित होकर इन सवालों को उठाकर आंदोलन के दौरान बनी युवकों की क्रांतिकारी पहचान को स्थापित करना चाहते हैं। इन्हीं बुनियादी सवालों को स्मरण कराने एवं कार्य रूप देने हेतु इस जुलूस में राज्य के विभिन्न जिलों, प्रखंडों एवं सुदूर गांवों से खेत मजदूरों, हरिजनों एवं आदिवासियों ने भाग लिया। छात्र युवकों के साथ मजदूरों और स्त्रियों की साझीदारी इस जुलूस की एक विशेषता थी।

स्मरणीय है कि लोकनायक जयप्रकाश नारायण से संबद्ध युवा संगठन, जिसका जन्म आंदोलन के गर्भ से हुआ, व्यवस्था परिवर्तन की चिंगारी लिये पिछले दो वर्षों से निरंतर सक्रिय हैं, जो उनकी प्रतिबद्धता की कसौटी है। इसकी मान्यताएं स्पष्ट हैं : **'जो जमीन जोते बोये, वो जमीन का मालिक होवे'**, बेरोजगारी की जिस विकराल समस्याओं से देश गुजर रहा है, उससे मुक्ति पाने के लिए विकेन्द्रीकरण की नीति कायम करना, छोटे-छोटे उद्योगों की स्थापना, सिंचाई, भूमि का पुनर्वितरण, आवश्यक वस्तुओं (कपड़ा, जूता, साबुन) आदि का उत्पादन छोटे-छोटे उद्योगों द्वारा किया जाना, आय सीमा बांधने के साथ-साथ खर्च का भी सीमा निर्धारण, बड़े स्टाल होटलों को बंद करना, मौलिक अधिकारों की प्राप्ति के साथ-साथ मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं काम के अधिकार को संविधान में मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया जाना इत्यादि शिक्षा में आमूल परिवर्तन के लिए पब्लिक स्कूल बंद

करने तथा शिक्षा का संबंध श्रम के साथ जोड़ने, आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर दबी जातियों को आरक्षण की सुविधा देने के साथ-साथ स्त्रियों को आरक्षण एवं प्रतिनिधि वापसी का अधिकार इनकी मुख्य मांगें रही हैं।

स्पष्टतः उपर्युक्त मुद्दों को लेकर अपनी शक्ति को आंकने, अगली संघर्ष नीति को तय करने तथा अपने संघर्ष की सूचना सरकार तक पहुंचाने एवं उनके वायदों की याद दिलाने के लिए ही इस जुलूस एवं सभा का आयोजन किया गया। सभा को संबोधित करते हुए विभिन्न सदस्यों ने विभिन्न समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किये।

कुमार सुशील का कहना था कि आज उन्हें एक तरफ लोकनायक की याद सता रही है जो अस्वस्थ हैं एवं दूसरी तरफ बिहार आंदोलन में हुए शहीदों की याद। ये हमारे प्रेरणास्त्रोत हैं जिनके सहारे हम आगे बढ़ रहे हैं। हमने जो भी मुद्दे उठाये हैं वे सभी किसी न किसी ढंग से उसी बुनियाद को दुहराते हैं जिस बुनियाद पर हमने 1974 के आंदोलन की शुरुआत की थी। दुःख की बात है कि जिन मुद्दों को उठाकर जनता पार्टी की सरकार बनी आज उन्हीं मुद्दों को अव्यावहारिक कह कर टाला जा रहा है। लेकिन हमारी लड़ाई

जारी है। व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई में जो भी सरकार बाधक बनेगी उसे सत्ता से हटना होगा।

आज देश में दोहरी शिक्षा पद्धति चल रही है, जिसे समाप्त होना चाहिए। पब्लिक स्कूल आज की अर्थव्यवस्था का प्रतीक तो हैं ही यह समाज के एक खास वर्ग का प्रतीक भी बन गया है। ऐसी केन्द्रित शिक्षा पद्धति जिससे देश की एक बड़ी संख्या (गरीब बच्चे) को कोई फायदा न हो और जो समाज को बांट रही हो उसे अविलंब समाप्त करना चाहिए। इसी तरह भारत जैसे गरीब देश में पांच सितारे होटल भारतीय जनता से एक मजाक है।

दक्षिण बिहार के संथाल परगना जिले के अरविंद ने बिहार में जो 240 कोयला खानें अभी बंद हैं और परिणामस्वरूप कायेले की कमी से देश में हाहाकार मचा हुआ है, उसकी चर्चा करते हुए वहां की स्थानीय समस्याओं का भी विश्लेषण किया। उनका कहना था कि खदानों का राष्ट्रीयकरण किये जाने के बाद मजदूरों को थोड़ी सुविधाएं तो मिली हैं लेकिन अभी भी बहुत अधिक मजदूर बेकार बैठे हैं। स्थानीय समस्या विकट है। स्थानीय लोगों को अपने इस्तेमाल के लिए कम मात्रा में कायेला नहीं मिलता है। गरीब लोग टन के हिसाब से कोयला कैसे खरीद सकते हैं। युवकों द्वारा सरकार से खदान शुरू करने की मांग के अनसुना कर दिये जाने के बाद स्थानीय युवकों ने खदानों में खुदाई आरंभ की किन्तु उन्हें जेल की हवा खानी पड़ी।

देश के तमाम अशिक्षित एवं शिक्षित बेरोजगारों का आह्वान करते हुए अरविंद ने कहा कि बंद खानें तभी खुलेंगी जब हम सभी एक साथ विभिन्न खानों का खोदना आरम्भ करें। इससे लाखों बेरोजगारों को रोजगार मिल सकता है। हमारा संघर्ष गैरकानूनी ढंग से चलाये जा रहे खान मालिकों से भी जारी रहेगा।

राष्ट्रीय संयोजक अमर हबीब (महाराष्ट्र) ने राजनैतिक परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा कि देश की तीन शक्तियां जनता पार्टी, इंदिरा कांग्रेस तथा वामपंथी दलों की शक्ति ही देश की राजनैतिक दिशा को अगले कुछ वर्षों तक प्रभावित करती रहेंगी। जनता पार्टी बावजूद अपनी कमजोरियों एवं अंतर्विरोधों के सत्ता में बनी हुई है। इंदिरा कांग्रेस इंदिरा की गलतियों के कारण अभी पर्याप्त शक्तिशाली नहीं बन सकी एवं वामपंथी दलों की सम्मिलित शक्ति भी कोई जनांदोलन नहीं खड़ा कर सकती। लेकिन फिर भी जनता पार्टी जिस राजनीति को चला रही है वह बिल्कुल पुराने ढंग की राजनीति है जो हमें तानाशाही की ओर ले जा सकती है। हालांकि आज तानाशाही का उतना बड़ा खतरा नहीं है

क्योंकि जनता पार्टी के अंदर के राजनैतिक समीकरण तानाशाही उन्मुख नहीं बन सकेंगे तथा संपूर्ण क्रांति के आंदोलनों के कारण जनता की जगी चेतना हमेशा प्रतिरोध पैदा करती रहेगी। फिर भी निहित स्वार्थ पर आधारित अनेक संगठित गुटों के अनुचित दबाव तथा संघर्ष करने के रवैये के कारण अराजकता पैदा होने का खतरा है, जिससे अंततः तानाशाही का खतरा पैदा हो सकता है। **आज जनता पार्टी पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ प्रभावी बनने का निरंतर प्रयास कर रहा है। साथ ही यह हिन्दू राष्ट्र की प्रस्तावना की घोषणा करके देश में लोकतंत्र विरोधी भावना पेदा कर रहा है। यदि यह सफल रहा तो निश्चय ही देश में साम्प्रदायिकता को गंभीर रूप से प्रोत्साहन मिलेगा।**

प्रश्न है इसका मुकाबला कैसे किया जायेगा। निश्चित रूप से रास्ता वह नहीं हो सकता जो राजनारायणजी का है। **राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ मात्र एक संगठन नहीं एक प्रवृत्ति है। अगर इस प्रवृत्ति को समाप्त करना है तो कार्यक्रमों एवं मूल्यों के स्तर पर लड़ाई करनी होगी। संगठन के स्तर पर नहीं, जैसे वह अगर हिन्दू राष्ट्र, हिन्दूवाद, वर्णव्यवस्था या जातीय धर्म की बात करता है तो हम इसके बदले धर्म-निरपेक्षता, लोकतंत्र, समानता एवं अंतर्जातीय धर्म के कार्यक्रम लागू करने की कोशिश करेंगे और उसका विरोध करेंगे।**

उपर्युक्त राजनैतिक दिशा एवं प्रवृत्ति को मोड़ देने के लिए विभिन्न युवा संगठनों से अपील करते हुए उन्होंने कहा कि देश की संगठित युवा शक्ति ही इस काम को कर सकती है। हमें अफसोस है कि लोकनायक अस्वस्थ हैं नहीं तो इन युवा शक्तियों को प्रभावी बनाने में हमें मदद मिलती। फिर भी छात्र युवा संघर्ष वाहिनी सभी संगठनों को संगठित होने के लिए पहल कर रही है। क्या जे. पी. के सक्रिय नेतृत्व के अभाव में युवा संगठनों की जिम्मेदारी और भी नहीं बढ़ गयी है? **1974 के आंदोलन के गर्भ से जो प्रश्न देश के सामने आये हैं उनकी पूर्ति के लिए आंदोलन से जुड़े हुए युवा तत्त्वों को फिर से संगठित होना चाहिए, लोकनायक ने भी यह इच्छा कई बार प्रकट की है।** ❑

साभार : 'दिनमान', 29 अप्रैल-5 मई, 1979

आमुख

सर्वनाश में सर्वसम्मति

❑ चिन्मय मिश्र

जम्मू-कश्मीर में आयी बाढ़ ने हमारे सामने कुछ महत्त्वपूर्ण अनसुलझे प्रश्न पुनः खड़े किये हैं। यही पिछले वर्ष उत्तराखंड में आयी बाढ़ के बाद भी हुआ था। इस बार भी सारा ध्यान राहत कार्यों की सफलता और असफलता के साथ ही साथ पिछली व वर्तमान सरकार द्वारा इस विषय पर किये गये प्रयत्नों की तुलना तक सिमट कर रह गया। परंतु इन विभीषिकाओं की पृष्ठभूमि पर विचार करने का साहस कोई भी राजनीतिक दल कर पाने में स्वयं को असमर्थ पा रहा है। पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र कहते हैं इसे 'सर्वनाश में सर्वसम्मति'। इसीलिए वर्तमान सभी राजनीतिज्ञ विकास की इसी सत्यानाशी अवधारणा पर एकमत हैं। हर कोई यह कह रहा है कि कश्मीर में 60 साल बाद इतनी भयानक बाढ़ आयी है। लेकिन तब तो इतना विनाश नहीं हुआ था। तो अब क्या हो गया कि विनाश प्रलय में बदल गया? आइए पढ़ते हैं। **–कार्य. सं**

जम्मू-कश्मीर में बाढ़ ने यह सिद्ध कर दी है कि राजनीति ने भले ही जम्मू और कश्मीर को दो हिस्सों में बांट दिया हो, लेकिन बाढ़ ने अपना धर्म निभाया और दोनों को एक ही समझा और एक-सा डुबोया। गौरतलब है ऊंचे पहाड़ों पर यदि औसत से दो इंच पानी भी ज्यादा (एक साथ) बरस जाता है तो वह तबाही लाने के लिए पर्याप्त होता है और इससे होने वाले विनाश की भविष्यवाणी कोई भी नहीं कर सकता। पहाड़ से पानी नीचे आने के बाद उसे घाटी में फैलने के लिए स्थान चाहिए। जब वह उपलब्ध नहीं होगा या उसे सिर्फ बांध से रोकने का प्रयास किया जायेगा, तो वह प्रलय ही लायेगा।

इस दौरान झेलम पर बना बांध टूटा, डल झील उफना गयी और श्रीनगर में एक मंजिल तक पानी चढ़ गया जो अब उतरने का नाम ही नहीं ले रहा है। यह प्रश्न स्वाभाविक है कि घाटी में बसा शहर कैसे डूब गया? याद करिये पिछले वर्ष असम में गुवाहाटी भी इसी तरह के जलप्लावन का शिकार हुआ था। श्रीनगर के इर्दगिर्द बने छः लेन के राष्ट्रीय राजमार्ग ने इस शहर को एक 'बड़े कटोरे' में बदल दिया। बारह महीनों यातायात की उपलब्धता को ध्यान में रखकर बनी इन सड़कों का डिजाइन ही इस तरह का है, जिससे इनकी ऊंचाई बढ़ जाती है। आकल्पकों और इंजीनियरों द्वारा लगातार यह दलीलें दी जाती हैं कि हम निकासी के लिए पुलियाओं आदि का भरपूर प्रावधान करते हैं, जबकि हवाई सर्वेक्षण में इन पुलियाओं की असलियत सामने आ जाती है, क्योंकि वहां से ये सुई के छेद की तरह नजर आती हैं, जिससे की पानी का ठीक निकास कठिन ही नहीं बल्कि असंभव होता है। वैसे जम्मू-कश्मीर में हुए विनाश के दो अन्य महत्त्वपूर्ण कारण रहे हैं आतंकवाद और

भूकंप

प्रकृति ही शक्तिशाली है...

नेपाल में लुम्जिंग के निकट 25 अप्रैल को आये भूकंप ने फिर बता दिया कि प्रकृति मानव से कहीं अधिक शक्तिशाली है। ऐसा नहीं है कि गंगा के मैदानी क्षेत्रों में पहले भूकंप नहीं आये। इतिहास के पन्ने पलटें, तो मुन्तखाब-उल-लुलाब में शाहजहानाबाद (दिल्ली) में 15 जुलाई, 1720 को आये एक भूकंप का जिक्र करते हुए कैफीखान ने लिखा है, '22वीं रमजान की नमजा पढ़ने मस्जिदों में नमाजियों की भीड़ थी कि अचानक जलजला आ गया। सैकड़ों की तादाद में लोग मारे गये। घटना के बाद लगभग 40 दिनों तक झटके आते रहे।'

इसी तरह, एक सिंतबर, 1803 को मथुरा-दिल्ली क्षेत्र तीन बजे सुबह थर्रा उठा था। सड़कें जगह-जगह पर फट गयीं तथा जोरदार फव्वारों के रूप में भू-जल बाहर आने लगा। दिल्ली में इस भूकंप से कुतुबमीनार का ऊपरी भाग लुढ़ककर नीचे आ गिरा। दोनों स्थानों पर हजारों लोग मारे गये। 16 जून, 1819 को गुजरात के कच्छ में ऐसा भयंकर भूकंप आया था कि कच्छ के रण में 65 किलोमीटर लंबा तथा तीन मीटर ऊंचा बांध बन गया। इसका नाम लोगों ने दिया 'अल्लाह बंध'।' उस भूकंप में भुज नगर नेस्तनाबूद हो गया था तथा लगभग 2 हजार लोग मारे गये थे, एक मस्जिद में ही मारे गये। भारतीय भू-वैज्ञानिक के टॉमस ओल्ढम के अनुसार, 1905 में धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश में आये भूकंप से 19,800 लोग मारे गये। बड़े भूकंपों की सूची में साल 2001 में कच्छ और वर्ष 2005 में कश्मीर-मुर्शिदाबाद के भूकंप भी आते हैं, जिनको हममें से अनेक ने महसूस किया। गुजरात भूकंप के बाद प्रदेश की सरकार ने पांच वर्ष में नेस्तनाबूद नगरों को दोबारा भूकंप के मानकों के अनुसार बसाने का काम कर दिखाया।

भूकंप और हमारी पृथ्वी का चोली-दामन का साथ है। रहना हमको इसी धरा पर हे, इसलिए जरूरी है कि भूकंप से डरे बिना, ऐसे कदम उठायें कि जान-माल की न्यूनतम हानि हो। भूकंप स्वयं में मारक नहीं होते, लोग मरते हैं इमारतों व उनकी छतों के गिरने से। इसलिए जिन भवनों पर लोगों का जमावड़ा लगता हो, उनका भूकंपरोधी होना आवश्यक है। अस्पतालों का तो भूकंपरोधी होना अति-आवश्यक है ही, उन तक पहुंचने वाली सड़कों का भी भूकंपरोधी होना जरूरी है। चीन के शिहुआन में साल 2008 में आये भूकंप में हजारों बच्चे स्कूली इमारतों के नीचे दबकर मर गये। मुख्य कारण था इसका दोपहर में आना। अधिकतर भूकंप रात में आते हैं, पर कोई निश्चित समय नहीं होता इनके आने का। इसलिए बड़े नगरों में भवनों का भूकंपरोधी होना फाइलों में ही नहीं, अपितु हकीकत में भी आवश्यक है। लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी जैसे नगरों में भूकंप से भूगर्भ में रेत के द्रव्य बन जाने की आशंका है, इसलिए ऐसे नगरों की इमारतों में दुर्घटना से बचने के लिए भूकंपरोधी निर्माण करना पड़ेगा। **–वी के जोशी**, भू-वैज्ञानिक

पर्यटन। **दोनों में ऊपरी तौर पर कोई समानता नहीं दिखती और वस्तुतः भी यह दोनों विपरीत ध्रुव हैं लेकिन इन दोनों से निपटने का एक ही तरीका है, मनमाना निर्माण। दोनों के लिए अधोसंरचना ही एकमात्र निराकरण है। गौरतलब है कि भारत में संभवतः सबसे ज्यादा वन विनाश जम्मू-कश्मीर में ही हुआ है।**

विनाश जम्मू-कश्मीर तक ही सीमित नहीं है। भारत के पश्चिमी छोर पर बसा बड़ौदा भी इस समय डूबा हुआ था। वहां भी इतनी ही बढ़ी बाढ़ आयी हुई थी। शहर उस बांध के दरवाजे खोल देने से डूबा जिस बांध को इस शहर को बाढ़ से बचाने के लिए ही निर्मित किया गया था। कुछ वर्ष पहले उकई बांध की वजह से 'हीरों का शहर' सूरत डूबा था और पहली बार भारत के किसी शहर की पहली मंजिल ने बाढ़ के पानी के स्वाद को चखा था। ये सब तो छोटे बांध हैं। अपनी पूरी ऊंचाई पा लेने के बाद (जिसकी प्रशासनिक अनुमति केन्द्र की नई सरकार ने दे दी है) नर्मदा नदी पर स्थित सरदार सरोवर बांध से क्या हो सकता है, उसके बारे में सोचना ही डर पैदा करने लगता है। हमें याद रखना होगा कि सरदार सरोवर बांध और नर्मदा नदी में झेलम नदी के मुकाबले कई गुना अधिक जलप्रवाह होता है। वहीं गुजरात के ही अहमदाबाद में स्थित 'साबरमती रिवर फ्रंट' में बाढ़ आ जाने से अहमदाबाद को भी खतरा पैदा हो सकता है। गत 10 सितंबर को दिल्ली में एक बैठक में मध्य प्रदेश के सबसे बड़े शहर इंदौर की खान नदी की सफाई के लिए साबरमती की तर्ज पर ही विकास के लिए 2700 करोड़ की योजना सैद्धांतिक तौर पर स्वीकृत की गयी है। योजना में जरा-सी गलती पूरे शहर को डुबो सकती है।

जम्मू-कश्मीर में आयी बाढ़ से निपटने में मिली असफलता के बाद यह कहा जा रहा है कि इससे बचाव के लिए चार वर्ष पूर्व बाईस हजार करोड़ रुपये की योजना भेजी गयी थी, लेकिन उस दिशा में कोई कार्यवाही नहीं हुई। यदि यह योजना दो लाख बीस हजार करोड़ रुपये की होती और क्रियान्वयन भी हो गया होता तो भी इस विनाश से बचा नहीं जा सकता था। विकास की इस नई अधोसंरचनात्मक अवधारणा को लेकर विवाद नया नहीं है। अनुपम मिश्र ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्याख्यानमाला में बताया कि सड़कों और रेल पटरियां डालने को लेकर पहला विवाद सन् 1936 में उठा था और तब से यह बहस लगातार जारी है। उस दौरान ग्रामीण सड़कें ही ज्यादा थीं, जो कि सतह से ज्यादा ऊंची नहीं होती थीं और पानी के बहाव को बाधित नहीं करती थीं। उसी समय राज्य मार्गों (अब राष्ट्रीय व राज्य राजमार्ग) की संकल्पना सामने आयी। लोगों ने जलजमाव की समस्या की ओर ध्यान दिलाते हुए इस तरह के निर्माण का विरोध किया। परंतु औपनिवेशिक शासन ने इसका जवाब लाठियों और गोलियों से दिया और विकास की इस नई अवधारणा को थोप दिया।

तकरीबन ८० वर्ष पश्चात् भी स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं आया। विकास की सड़कें और रेलवे पटरियां भी भौगोलिक व जलवायु परिस्थितियों के व्यवस्थित आकलन के बिना अपनी लंबाई बढ़ाती गयीं। जम्मू-कश्मीर की बाढ़ के संबंध में कहा जा रहा है कि रेलवे पटरियों के लिए हुए निर्माण ने तटबंधों और कई स्थानों पर ऊंचे बांधों की भूमिका निभायी और पूरा प्रदेश डूब गया। श्रीनगर के कटोरा बन जाने की चर्चा हम कर चुके हैं। ऐसा ही विकास पूरे देश में हुआ और राष्ट्रीय राजमार्गों और रेलवे की वजह से अनायास ही लाखों किलोमीटर लंबे तटबंध और बांध बन गये और अभी भी बनते ही जा रहे हैं। नई सरकार भी प्रतिदिन 30 किलोमीटर राष्ट्रीय राजमार्ग के निर्माण का लक्ष्य बना रही है। ये राष्ट्रीय राजमार्ग देश को जोड़ने के बावजूद उसे दो हिस्सों में बांटते हैं और उत्तराखंड, असम, जम्मू-कश्मीर व गुजरात में आने वाली बाढ़ हमें समझा रही है कि हमारा भू-भाग एक ही भूखंड है। आधुनिक विकास को चमकदार बनाने वाले गुजरात में बने बड़ौदा-अहमदाबाद एक्सप्रेस-वे का डूबना भी यही सिद्ध कर रहा है।

हमें यह स्वीकार करना होगा कि बाढ़ मौसम की अनिवार्यता है और इसका आना शाश्वत है। इससे निपटा नहीं जा सकता बल्कि इसके साथ रहा जा सकता है और इससे दोस्ती की जा सकती है। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप बारिश की अनियमितता बढ़ी है और इसकी तीव्रता में भी अनायास ही जबरदस्त इजाफा हुआ है। कई स्थानों पर कुछ ही घंटों में पूरे मानसून में बरसने जितना पानी बरस जाता है और इस स्थिति में दुनिया का सर्वाधिक विशाल और मजबूत बांध भी पानी के इस वेग का सामना एक हद तक ही कर सकता है। इस बीच हमारे यहां 100 नये स्मार्ट शहरों के निर्माण की बात चल रही है। इन सभी के लिए विकास की आधुनिकतम तकनीकों के प्रयोग की बात की जा रही है। हमें विचारना होगा कि इनका कलेवर व स्थान चयन कैसे हो। अभी तक तो शहर एक-एक करके डूबते हैं, क्योंकि पुराने शहर अपनी भौगोलिक स्थितियों व जलवायु के हिसाब से विकसित हुए थे। परंतु एक-सी तकनीक से विकसित यह सौ शहर तो एक साथ डूबेंगे। तब क्या होगा? इस पर अभी विचार करना जरूरी है। नई सरकार के 100 दिन पूरे होते न होते पर्यावरण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने पर्यावरण स्वीकृति के लिए लंबित 324 आवेदनों में से 240 को स्वीकृति प्रदान कर दी। एक भी अस्वीकृत नहीं हुआ। इसके परिणाम भी कुछ वर्षों में सामने आ जायेंगे, जो यह साबित करेंगे कि 'सर्वनाश में सर्वसम्मति' है। ❑

भूमि-अधिग्रहण

भूमि अधिग्रहण अध्यादेश : ज़िद पर अड़ी सरकार

❑ जयन्त वर्मा

भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम अध्यादेश को लेकर व्यापक जन आक्रोश सामने आया है। लेकिन केन्द्र सरकार ने इसे लेकर ज़िद पकड़ ली है। नये भूमि अधिग्रहण अध्यादेश की पृष्ठभूमि में देखना और समझना होगा कि प्रजातंत्र में जनता के मतों से चुनी गयी सरकारें अंततः किनके हितों के लिए कार्य करती हैं। **–कार्य. सं.**

सन् 1894 के भूमि अधिग्रहण कानून को यूपीए सरकार ने सन् 2013 में नया स्वरूप दिया था। इसमें बहुफसली सिंचित भूमि का सीधे अधिग्रहण नहीं करने, अधिग्रहित जमीन के मालिकों का पुनर्वास, आजीविका खोने वाले किसानों के लिए 12 माह तक तीन हजार रुपये प्रतिमाह जीवन-निर्वाह भत्ता, पचास हजार रुपये तक पुनर्वास भत्ता, प्रभावित किसान परिवार को ग्रामीण क्षेत्र में 1500 वर्गफुट जमीन पर और शहरी क्षेत्र में 500 वर्गफुट जमीन पर मकान दिये जाने के प्रावधान थे। डेवलपर्स को भूमि देने पर किसानों के लिए सालाना आय व 40 फीसदी मुआवजा देने की व्यवस्था थी। 80 फीसदी किसानों की सहमति के उपरांत ही औद्योगिक कॉरीडोर, सस्ते मकान बनाने आदि के लिए भूमि अधिग्रहण का प्रावधान और सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन का सर्वेक्षण अनिवार्य बनाया गया। सरकारी अधिकारी द्वारा कानूनों का उल्लंघन करने पर दण्ड का प्रावधान भी था।

एनडीए सरकार ने अध्यादेश के जरिये राष्ट्रीय सुरक्षा, रक्षा, ग्रामीण आधारभूत संरचना, औद्योगिक कोरिडोर एवं पीपीपी समेत सार्वजनिक आधारभूत संरचनाओं के लिए बिना सहमति भूमि अधिग्रहण का प्रावधान लागू किया है। इन मामलों में सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन का प्रावधान भी हटा दिया गया। अनुपयोगी भूमि लौटाने की सीमा अवधि को बढ़ा दिया है। छः माह का जीवनकाल समाप्त होने के पूर्व अध्यादेश में कुछ संशोधनों के साथ कानून को लोकसभा ने तो पारित कर दिया किन्तु राज्यसभा में बहुमत के अभाव में एनडीए की इच्छा का कानून पारित होना असंभव है। देश के तमाम किसान संगठनों और विपक्षी दलों ने नये प्रावधानों को किसान विरोधी घोषित करते हुए, उसका विरोध किया है। सत्तारूढ़ होने के नौ महीने में ही ऐसा लग रहा है कि एनडीए सरकार कंपनियों के फायदे के लिए किसानों के हितों की तिलांजलि दे रही है। इसी क्रम में उसने अध्यादेश की अवधि पूर्ण होने के बाद नया संशोधन अध्यादेश जारी कर दिया है।

सन् 1990 के बाद से भारत में किसानी पर संकट छाया हुआ है। सरकार ने किसानी को घाटे का सौदा बनाकर किसान को खेती छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया है। तीन लाख से अधिक ऋणग्रस्त किसान पिछले 15 वर्षों में आत्महत्या कर चुके हैं। वर्ष 2000 में एनडीए सरकार ने विजन 2020 तैयार किया था, जिसके अनुसार सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के योगदान को घटाकर 6 फीसदी कर देने का लक्ष्य था। यूपीए सरकार ने भी इसी दृष्टिपत्र को अपनाया। सभी राजनीतिक दल सहमत थे कि किसानी को घाटे का सौदा बना दिया जाये। खाद्यान्न का समर्थन मूल्य इस प्राकार तय किया जाता है कि जीडीपी में कृषि क्षेत्र का योगदान प्रतिवर्ष एक फीसदी घट जाये। चालू वर्ष में जीडीपी 1,41,08,945 करोड़ रुपये है। कृषि का योगदान एक फीसदी घटाने के लिए वर्ष खाद्यान्न की कीमत से 14 लाख करोड़ रुपये निकाल लिये जायेंगे। वर्ष 2015-16 का केन्द्रीय बजट 17 लाख 77 हजार 477 करोड़ रुपये का है। घाटे के द्वारा किसान को कर्ज के जाल में फसाने की नीति के तहत चालू वर्ष में उसे 8 लाख करोड़ रुपये कर्ज दिया जायेगा। आशय यह है कि भारत सरकार का कुल खर्च किसान की मेहनत के मोल से निकाला जाता है। खेती किसानी में संकट की जड़ में यही कारण है। इंदिरा गांधी ने फरवरी, 1984 में बैंकिंग विनियमन

कानून, 1949 में धारा 21 (क) जोड़ी थी, जो ऋणदाता संस्थाओं द्वारा किसान पर थोपे गये अत्यधिक ब्याज की न्यायालयीय समीक्षा के अधिकार से उसे वंचित करती है। कृषि मंत्रालय की स्थाई संसदीय समिति ने 14वीं लोकसभा के दरम्यान इस प्रावधान को हटाने की सिफारिश की थी। किन्तु शरद पवार ने उसे अस्वीकार कर दिया।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और वित्तमंत्री अरुण जेटली भूमि अधिग्रहण संबंधी कानूनी प्रावधानों को विकास के लिए अति आवश्यक बता रहे हैं। गौरतलब है विकास को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में बाजार के विकास (जीडीपी) को देश का विकास घोषित कर दिया गया है। संविधान के भाग चार में शासन के जो मूलभूत तत्त्व दिये गये हैं, वे मानव केन्द्रित विकास की बात कहते हैं। इस लिहाज से बाजार केन्द्रित विकास असंवैधानिक है।

विकास के अधिकार की अंतर्राष्ट्रीय संधि 1987 में विकास के तीन मानदण्ड बताये गये हैं—(1) भूमि अधिग्रहण के मामले में प्रभावितों की सहमति (2) विकास की संरचना से होने वाले लाभ में प्रभावित की भागीदारी और (3) प्राकृतिक संसाधनों पर पूर्वानुसार अधिकार। भूमि अधिग्रहण कानून, 1894 इस कसौटी पर अन्यायपूर्ण था। सन् 2013 का कानून इस संधि के करीब था किन्तु एनडीए का राज्यसभा में विचाराधीन विधेयक विकास के अधिकार की संधि के विपरीत है। अतः किसान के मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाला है। जुमलों के बल पर सत्तासीन होने वाली सरकार का असली रूप अब सामने आ गया है। देखना है कि बाजार केन्द्रित विकास को आगे बढ़ाने के लिए वह किसानों के मानवधिकारों की किस हद तक अनदेखी करती है। ❑

अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा है भूमि-अधिग्रहण

❑ रघु ठाकुर

इंदौर में पिछले दिनों जो वैश्विक पूंजी निवेशकों का सम्मेलन हुआ था, जिस पर मध्य प्रदेश सरकार ने करोड़ों रुपये खर्च किये थे, इसी रणनीति का एक हिस्सा था तथा सूचनाओं के अनुसार श्री शिवराज सिंह चौहान के प्रति नापंसदगी के बावजूद भी अंतिम दिन श्री नरेन्द्र मोदी इस सम्मेलन में पहुंचे और उन्होंने शिवराज सिंह की प्रशंसा भी की तथा तीन महत्त्वपूर्ण नीतिगत संकेत भी दिये—1. श्री नरेन्द्र मोदी प्रधानमंत्री व श्री शिवराज सिंह चौहान मुख्यमंत्री ने स्पष्ट घोषणा की 'आप (उद्योगपति) जहां उंगली रखें वह जमीन आपको मिल जायेगी।' 2. देश में पूंजी का संकट है तथा उसका हल विदेशी और देशी पूंजीपतियों/साहूकारों का पूंजीनिवेश ही हो सकता है। विकास व रोजगार सृजन की एकमात्र औषधि पूंजीनिवेश व बड़े उद्योग हैं। 3. प्रधानमंत्रीजी ने सम्मेलन में ही मुख्यमंत्री से कहा कि आप मुझे छोड़ने जाने का शिष्टाचार छोड़ें तथा यहीं निवेशकों से चर्चा करें यानी राजनीतिक रूप से प्रधानमंत्री ने संकेत दे दिया कि देश की निर्वाचित सरकार से और देश के शिष्टाचार के कानूनों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण पैसे वाले हैं। हालांकि उन्हें बाहर तक छोड़ने जाने व आने में बमुश्किल पांच मिनट का ही समय लगता, परंतु देश व दुनिया के आर्थिक मालिकों का समय भारत के प्रधानमंत्री से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री ने इंदौर के सम्मेलन में यह स्पष्ट तौर पर कह दिया कि जहां उंगली रखोगे वहां की जमीन आपको मिल जायेगी, इनका यह कथन कुछ-कुछ ऐतिहासिक व पौराणिक अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े की याद दिलाता है जिसे यज्ञ के बाद छोड़ा जाता था तथा जहां तक घोड़ा पहुंच जाए वह जमीन यज्ञ करने वाले राजा की हो जाती थी। अगर कोई घोड़े को रोक ले तो उस राजा के साथ युद्ध होता था। उस जमाने का युद्ध राजा बनाम राजा होता था, अब 21वीं सदी का यह युद्ध सत्ता बनाम जनता का है क्योंकि इस घोड़े को बांधने का प्रयास जनता को ही करना होगा।

जिन पांच मुद्दों को नये भूमि अधिग्रहण संशोधन अध्यादेश 2014 में शामिल किया गया है, उनमें से चार तो पहले ही विद्यमान थे। जो पांचवां बिन्दु जोड़ा गया है वह है—औद्योगिक कॉरीडोर। मोदी सरकार 500 स्मार्ट सिटी बनाना चाहती है तथा उसमें औद्योगिक कॉरीडोर भी बनेंगे तभी वे टोकियो, सिंगापुर, पेरिस या बर्लिन जैसे बन सकेंगे और इनके लिए लगभग पांच करोड़ एकड़ कृषि भूमि का अधिग्रहण करना होगा यानी भारत की कृषि भूमि का लगभग चौथाई हिस्सा इस नये शहरीकरण और औद्योगीकरण की भेंट चढ़ जायेगा।

हम किसान व कृषि जनित रोजगारों को मिटाकर उद्योग जनित चंद निपुण रोजगार पैदा करेंगे। हम खाद्यान्न आयात के मार्ग प्रशस्त करेंगे तथा खाद्य निर्यातक से खाद्य आयातक देश में तब्दील होकर विश्व व्यापार संगठन व दुनिया के सम्पन्न देशों की इच्छापूर्ति करेंगे। हम पांच-छह करोड़ हाथों को बेरोजगार कर पन्द्रह-बीस लाख लोगों को रोजगार देंगे तथा 25 करोड़ की विशाल आबादी को भुखमरी की ओर ढकेलेंगे। हम ग्राम व ग्रामीण सभ्यता को नष्ट कर औद्योगिक असभ्यता के दौर को लायेंगे। क्या देश की जनता व राजनीतिक दल इन आसन्न खतरों पर विचार करेंगे या केवल कुर्सी-कुर्सी खेलते

रहेंगे, इस प्रश्न का उत्तर 21वीं सदी को देना होगा।

और अंत में यह कि 29 दिसंबर, 2014 को केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने उपरोक्त अध्यादेश को स्वीकृति दी तथा 30 दिसंबर को ही राष्ट्रपतिजी ने इसे स्वीकृति प्रदान की। अच्छा होता कि राष्ट्रपतिजी इन बिन्दुओं पर निर्णय के पूर्व विचार करते—1. 23 दिसंबर 2014 को संसद का सत्र समाप्त हुआ है और अगर सरकार उनमें उन्हें पारित नहीं करा सकी तो क्या यह अध्यादेश लाना लोकतांत्रिक परंपरा होगी। 2. जब भूमि अधिग्रहण एवं पुनर्वास विधेयक 2013 पारित हुआ था, जिसे संसद ने लगभग सर्वसम्मति से स्वीकृत किया था, जिसमें भाजपा का भी समर्थन था और जिसे कानूनी शक्ल देकर जारी करने का आदेश राष्ट्रपतिजी के रूप में स्वतः प्रणव बाबू के हस्ताक्षर से हुआ था तब क्या यह संशोधन वैधानिक संवैधानिक परंपराओं और राष्ट्रपतिजी के पद और संसद के सम्मान के अनुकूल होगा। 3. स्वतः राष्ट्रपतिजी ने अध्यादेश का प्रारूप लेकर आने वाले मंत्रियों से यह पूछा कि इतनी शीघ्रता क्या है, अब लोग जानना चाह रहे हैं कि राष्ट्रपतिजी को हस्ताक्षर करने की भी शीघ्रता क्या थी। 4. अगर कोई आवश्यकता होती भी तो क्या यह उचित नहीं होता कि राष्ट्रपतिजी अपनी पहल पर संसद का दो दिवसीय विशेष अधिवेशन आमंत्रित कराते, इन प्रस्तावों पर बहस कराते और फिर निर्णय करते। कतिपय प्रबुद्धजनों ने यह आशंका व्यक्त की है कि कांग्रेस व समूचे विपक्ष का एक धड़ा भी इसके पक्ष में रहा है तथा राष्ट्रपतिजी जो भारतीय राजनीति व संसद के चरित्र के बेहतर जानकार हैं, भी इस गुप्त समझ को जानते वह समझते हैं, अतः उन्होंने तीनों पक्षों की लाज रख ली। सत्तापक्ष को वांछित अध्यादेश दे दिया, विपक्ष का बुर्का नहीं उतरने दिया तथा उद्योग जगत को खुश कर दिया। ❑

आदिवासियों को विशेषज्ञों से बचाएं

❑ साकेत दुबे

हमारे देश में आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने की मुहिम के चलते हमने उनका जीना दूभर कर दिया है। कोई भी समाज या समुदाय अपनी आंतरिक चेतना से ही बदलाव को अपना पाता है। हमारे नीति नियंताओं ने भारत के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करने के निमित्त आदिवासियों को जंगल से बाहर खदेड़ने के लिए एक काल्पनिक मुख्यधारा प्रवाहित कर ली है और यह बहाकर कहां ले जायेगी, इसका भान किसी को भी नहीं है। प्रमुख चिन्तक डॉ. कपिल तिवारी से किये गये संवाद पर आधारित महत्त्वपूर्ण आलेख। **–का. सं.**

आदिवासियों का जीवन नैसर्गिक है। वह प्रकृति से भिन्न नहीं है। जल, जंगल, जमीन सब कुछ उसका अपना घर है। उनमें स्वामित्व का बोध भी नहीं है। आदिवासी जंगल या खेत में अपनी झोपड़ी बनाकर जरूर रहता है, लेकिन वह अपनी प्रकृति से किसी भी तरह अलग नहीं होता, बल्कि यूं कहना चाहिए कि वह प्रकृति में ही समाहित है। उसकी स्वतंत्रता भी नैसर्गिक है। उसका जीवन सत्य पर आधारित है। वह राज्य की अवधारणा की छाया में दी जाने वाली स्वतंत्रता में कभी नहीं जिया। उसकी अपनी ही स्वतंत्रता है। ये बातें जाने-माने चिन्तक और आदिवासियों के बीच में लंबा समय व्यतीत करने वाले कपित तिवारी ने कही।

उनका मानना है कि दुनिया में एकमात्र यही ऐसा समाज है जो वर्तमान में जीता है। अपने अतीत या भविष्य में नहीं। इसलिए उनमें संग्रह की प्रवृत्ति नहीं है। गौरतलब है कि यह समाज कभी बीमार समाज नहीं रहा और यदि रहा होता तो कब का खत्म हो गया होता। आज उसकी खाद्य सुरक्षा और पोषण का मामला गड़बड़ा गया है और उसकी संतानें कुपोषण की शिकार हैं, तो उसके गहरे और मूल कारण हैं, जिन्हें हमें बहुत गहराई से समझना होगा। याद रखिये यह सारा मामला पिछली डेढ़-दो सदियों में ही गड़बड़ाया है। इसके मूल कारणों में आदिवासी के नैसर्गिक जीवन का प्रभावित होना, उनकी नैसर्गिक स्वतंत्रता पर हमला, उनके मनोविज्ञान का बदलना और उन्हें हीनता का बोध कराना, विकास में उनकी भागीदारी सुनिश्चित नहीं करना, सब कुछ लिखे-पढ़े अपढ़ों के द्वारा तय करना और उनसे पूछना तक नहीं, आदि शामिल हैं।

श्री तिवारी ने आदिवासियों की खाद्य-सुरक्षा और पोषण का मामला गड़बड़ाने और कुपोषण के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा, ''दरअसल, तथाकथित बुद्धिजीवियों की दृष्टि में आदिवासी को प्रकृति से अलग देखा जाता है। यह एक बड़ी भूल है। सभ्य कहे जाने वाले समाजों ने उसकी नैसर्गिक स्वतंत्रता पर हमला किया। उनके मनोविज्ञान को हीनता का बोध कराया और उसे समझाया कि तुम असभ्य हो, पिछड़े हो, जंगली हो, गंवार हो, बेचारे हो आदि आदि। इसने उसका मन ग्लानि से भर दिया। वह स्वयं को ही हीन समझने लगा। इसलिए वह हमारे आपके द्वारा तय तथाकथित मुख्यधारा (जिसके बारे में किसी को पता नहीं है कि यह धारा तय करने

वाला कौन है) में शामिल होने की जद्दोजहद में लग गया। इससे उसका जीवन चक्र बदला है।

जिस आदिवासी समाज का अपने जल, जंगल और जमीन का स्वामित्व का भाव ही नहीं था, उस पर हमने यह भाव विकसित करने का प्रयास किया। स्वामित्व की अवधारणा के संघर्ष में सभ्य कहे जाने वाला समाज उसका शोषक बन गया। आदिवासी से उसका जंगल, नदी, पहाड़ सबकुछ तो छीन लिया गया। स्वामित्व के बोध का तत्त्व कुछ इस तरह शामिल किया गया कि अब वह अपनी प्राकृतिक परिवेश में रह ही नहीं पा रहा है। उसके खेत, घर सब कुछ को बहुत सीमित दायरे में कर दिया। उसे यह बताया गया कि यह थोड़ी सी जमीन और छोटा-सा घर ही उसका है। जंगल केवल उसके नहीं है। यही विस्थापन खतरनाक साबित हुआ है।

श्री तिवारी ने कहा, ''मुगलों ने भी देश के आदिवासियों के जीवन में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। अकबर के जमाने में बीरबल ने भू-राजस्व की अवधारणा प्रस्तुत की। यह लगान वसूलने के लिए थी। अंग्रेजों के आगमन के बाद भूमि कानूनों और मध्य प्रदेश के पचमढ़ी में वन विभाग की स्थापना के साथ जंगलों में इनके जीवन को प्रभावित करना आरम्भ किया। वन और भूमि कानूनों ने भी इन पर कुठाराघात किया है। कानूनों के जरिये इनसे यह सब छीना गया है। अंग्रेजी शासनकाल में पश्चिम नृतत्वशास्त्रियों, समाज-शास्त्रियों ने आदिवासियों को समझने-बूझने की जो तहरीरें दीं, वे गलत थीं। इन्हीं के काल में विकास की कथित आधुनिक अवधारणा ने जन्म लिया।

हमारे विकास नियंताओं ने कभी आदिवासियों से नहीं पूछा कि वे किस तरह का विकास चाहते हैं? यदि पूछा जाता तो वे बताते कि उन्हें किस तरह का विकास चाहिए।

की बात अलग-अलग तरीके से करता। लेकिन हमने ही उनका विकास तय किया। इतना ही नहीं हमने तय कर दिया कि उन्हें किस तरह पढ़ना चाहिए। विद्यालय खोल दिये। अस्पताल खोल दिये। सड़कें बना दीं। घर बना दिये। जमीन के कुछ टुकड़े आवंटित कर दिये और बदले में उनके जंगलों को अभ्यारण्य में बदल दिया और उन्हें वहां से खदेड़ दिया। उन पर आरोप मढ़ दिये कि वे जंगल नष्ट करते हैं, शिकार करते हैं और इससे वन्य प्राणियों को नुकसान पहुंच रहा है। जबकि ऐसा नहीं था। उनके रहते जंगल कभी भी नष्ट नहीं हुए, बल्कि सुरक्षित रहे। जंगलों और वन्य प्राणियों को नुकसान तो हमारे आगमन के बाद पहुंचा। जंगलों से विस्थापन एक बड़ा कारण है, जिसने उसके जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया है। हमारे विकास नियंताओं ने विकास में उनकी सही भागीदारी ही सुनिश्चित नहीं की। ''कलेक्टर और पत्रकार'' जिन्हें मैं सर्वविषयक विशेषज्ञ कहता हूं, ने भी आदिवासियों का कबाड़ा ही किया है।

श्री तिवारी ने जोर देकर कहा, ''आदिवासियों को उनके अपने तई उनके परिवेश के परिप्रेक्ष्य में गहराई से समझने की जरूरत है। हमें उनके नैसर्गिक जीवन को लौटाना होगा। उन्हें उनकी नैसर्गिक स्वतंत्रता भी बख्शनी होगी। उनके अंदर जो हीनता का बोध हमने भर दिया है उससे उन्हें मुक्त करना होगा। उनके जल, जंगल, जमीन के उस भाव की स्थापना करनी होगी, जिसमें उसका स्वामित्व का भाव ही नहीं था, उन्हें वह सबका समझता आया है। विकास में उसकी भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। उससे पूछना होगा कि वह किस तरह का विकास चाहता है।''

श्री तिवारी ने कहा, ''जल, जंगल और जमीन के अधिकारों को लेकर जो तमाम किस्म के आंदोलन चल रहे हैं, लड़ाइयां लड़ी जा रही हैं, उन्हें भी आदिवासियों की नैसर्गिकता को गंभीरता से समझना चाहिए। क्योंकि इन लड़ाइयों से उनका कुछ बनने वाला नहीं है। मुझे आशंका है राज्य की ताकत जिस दिन चाहेगी वह इन सब आंदोलनों और लड़ाइयों को समाप्त कर देगी। इसलिए जरूरी है कि आदिवासियों को जिम्मेदारी, गंभीरता और समझ-बूझकर से अपने अधिकारों की लड़ाइयों के लिए स्व-प्रेरित किया जाये। उनके साथ मिलकर चल रहे संघर्षों का तौर तरीका भी बदलना होगा। ❑

स्वास्थ्य

मत पियो या कम पियो

❑ अनुपम मिश्र

यूरोप को शराब की लत से उपजी स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने में अत्यधिक कीमत चुकानी पड़ रही है। अपनी स्वर्ण जयंती पर यहां की एक शराब कंपनी ने शराब पीने में कमी की अनुशंसा करते हुए विज्ञापन में मुंह दिखायी कर अगले 50 वर्षों तक पुनः ऐसी अपील न करने की बात भी कही है। इन सब प्रपंचों से इतर यह आलेख इस समस्या की ओर अत्यंत तीक्ष्णता से ध्यान दिलवा रहा है कि शराब अंततः जानलेवा ही है। भारत में राज्य सरकारें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर शराब की बिक्री को प्रोत्साहन दे रही हैं। क्या सरकार और उसके नुमाइंदे इस विपदा से बाहर निकलने का कभी कोई प्रयत्न करेंगे? **–कार्य. सं.**

यूरोप के देशों में शराब से संबंधित समस्याओं की कीमत कोई दो खरब यूरो यानी मोटे तौर पर 140 खरब रुपये मापी गयी है। यह आंकड़ा विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वे से निकलकर आया है। इन देशों में अल्कोहल, यानी शराब का सबसे बड़ा व्यापार करने वाली स्वीडन की एक कंपनी 'सिस्टम बोलागेट' ने अब खुद लोगों से अपील की है कि 'अरे भाई शराब पीना कम करो।'

नशाबंदी की कोशिशें दुनिया भर में अलग-अलग ढंग से होती ही रहती हैं। कहीं यह एक धार्मिक आंदोलन का रूप लेता है कहीं नैतिक तो कहीं कभी इसका रूप राजनैतिक भी हो जाता है। लेकिन ऐसा पहली बार हुआ है कि शराब का सबसे बड़ा व्यापार करने वाली कंपनी ने पूर्ण नशाबंदी की तो नहीं लेकिन शराब की मात्रा कम करने की अपील की है।

इस कंपनी ने यूरोप के विभिन्न देशों में अखबार आदि के माध्यम से पूरे-पूरे पन्ने के विज्ञापन आदि जारी किये हैं। इन विज्ञापनों में कहा गया है :

''आपको यह जानकर अटपटा लगेगा कि शराब के कारोबार में लगी दुनिया की सबसे बड़ी कंपनी होने के बावजूद हम यूरोप महाद्वीप में बढ़ती जा रही शराब की खपत से बहुत चिन्तित हैं। दूसरे महाद्वीपों की तुलना में यूरोप के लोग लगभग दुगनी शराब पी जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि लगभग छह लाख लोग हर वर्ष शराब के कारण होने वाली बीमारियों से मरते हैं। एक देश से दूसरे देश में थोड़ी बहुत परिस्थिति बदल जाती है। संस्कृति बदलने के कारण भी कुछ चीजें ऊपर नीचे हो जाती हैं। लेकिन कुल मिलाकर पूरे यूरोप में शराब संबंधी समस्याएं बहुत गंभीर हैं और ये बड़ी तेजी से बढ़ चली हैं। यूरोप के ये देश एक संघ के रूप में सामने आये हैं, अपनी स्वायत्तता और नीतियां अपने-अपने ढंग से चलाते हुए। यहां अलग-अलग चीजों का उत्पादन शुल्क, आबकारी शुल्क अपने-अपने हिसाब से तय किया जाता है इसलिए तरह-तरह की शराब की कीमतों में भी उतार-चढ़ाव आ जाता है।''

''उत्तरी यूरोप के देशों में शराब का दाम अन्य पड़ोसी देशों की तुलना में ज्यादा है। यूरोपीय संघ बन जाने के कारण देशों की सीमाएं समाप्त हो गयी हैं और इसलिए अब यूरोप में कोई भी, कहीं भी बिना रोक-टोक आ जा सकता है। इसलिए उत्तर यूरोप देशों के नागरिक अब अपने पड़ोसी देशों में जाकर भारी मात्रा में शराब के विभिन्न प्रकार थोक में खरीद कर अपने घरों में जमा करने लगे हैं।

''एक समय स्वीडन के लोग अन्य देशों की तुलना में ज्यादा शराब नहीं पीते थे। लेकिन अब यहां प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक खपत दस गुना बढ़ गयी है। इसी अनुपात में बढ़ गयी है शराब संबंधी समस्याएं।

स्वीडन में शराब की कम खपत का वहां की संस्कृति से कोई लेना-देना नहीं है। कोई भी व्यक्ति शुक्रवार की रात को हमारे इसी देश में आये तो उसे पक्का पता चल जायेगा। इसका मुख्य कारण ये है कि स्वीडन में शराब

श्री गणपत राव पाटिल का निधन

महाराष्ट्र के वरिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता एवं स्वतंत्रता सेनानी श्री गणपत पाटिल का 21 अप्रैल, 2015 को कोल्हापुर में निधन हो गया।

श्री गणपत काका ने श्री अप्पा पटवर्धन के मार्गदर्शन में भंगीमुक्ति का कार्य आरंभ किया। वे भूदान पदयात्राओं में शामिल रहे।

गोवा मुक्ति आंदोलन में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान था। उनका पूरा जीवन सर्वोदय के लिए समर्पित था। बिना किसी यश की कामना के बगैर वे एक निष्ठावान सैनिक के रूप सैदव लक्ष्य प्राप्ति के लिए अग्रसर रहते थे। बायो ऊर्जा के विकास एवं उसे लोक सुलभ बनाने में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान था। आपने सर्व सेवा संघ के सेवाग्राम परिसर में एक बॉयोगैस संयंत्र लगाया। यह एक ऐसा सुलभ संयंत्र है जिसकी स्थापना के बाद ऊर्जा उत्पादन में कोई खर्च नहीं होता। कोल्हापुर (महाराष्ट्र) जिले के बर्कीगाद गांव को आदर्श गांव बनाने के उद्देश्य आपने अपना ध्यान यहां केन्द्रित किया था।

सर्व सेवा संघ ने अणु समझौते के विरुद्ध गौतम से गांधी (बोधगया से राजघाट, दिल्ली) तक की यात्रा निकाली थी। श्री गणपत काका पूरी यात्रा में साथ रहकर हमारा हौसला बढ़ाते रहते थे।

गणपत काका के निधन से सर्वोदय आंदोलन ने अपना एक निष्ठावान एवं समर्पित सैनिक खो दिया है। सर्व सेवा संघ (अ.भा. सर्वोदय मंडल) उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है तथा उनके परिवारजनों एवं कोल्हापुर जिला सर्वोदय मंडल के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करता है।

–महादेव विद्रोही, *अध्यक्ष, ससेसं*

''पुरुष झगड़ा करते हैं, शराब पीते हैं, लेकिन उनकी स्त्रियां चुपचाप सहन कर लेती हैं। उनका काम है कि वे अपने पति से कहें कि इन आदतों को छोड़ देना चाहिए और अगर उनका कहना पुरुष न मानें तो कहना चाहिए कि जब तक ऐसी आदत आप नहीं छोड़ेंगे तब तक हम भोजन नहीं करेंगीं। यह सारा काम स्त्रियों का है।'' *—विनोबा*

की बिक्री पर बहुत कड़ा नियंत्रण है। वह सीमित जगहों पर बिकती है। वह हर समय उपलब्ध नहीं होती और उसके दाम में करों की मात्रा काफी जयादा होती है। कम उम्र के बच्चों, किशोरों को यह बेची नहीं जाती।''

इस कंपनी ने अपने पचास साल पूरे होने पर जारी किये गये विज्ञान में कहा है : ''इस उम्र के आने पर, पचास साल पूरे होने पर हमें कुछ संकल्प लेना चाहिए, कुछ शुभेच्छा भी रखनी चाहिए! इसलिए इस कंपनी ने अपनी शुभेच्छा जाहिर की है कि स्वीडन के लोग, यूरोप के लोग भी कुछ सोचें और शराब संबंधित समस्याओं में कमी लायें। यूरोप की आर्थिक व्यवस्था ऐसी बातों पर कोई ध्यान देती हो—इसका कोई सबूत नहीं है। लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति नागरिकों की शारीरिक और मानसिक स्थिति से जुड़ी है—यह हमें नहीं भूलना चाहिए। शराब से जुड़ी समस्याओं ने इन देशों में कितना नुकसान किया है, इसका कोई ठीक-ठीक अंदाज नहीं मिलता लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन के ये आंकड़े बता रहे हैं कि हम कितने खरब रुपये बरबाद किये चले जा रहे हैं। शराब में बहाये चले जा रहे हैं।''

शराब की इस कंपनी ने विश्व स्वास्थ्य संगठन के साथ मिलकर एक सुंदर पुस्तक भी प्रकाशित की है। इसकी प्रतियां कंपनी से मांगने पर निःशुल्क मिल जाती हैं। विज्ञान में कंपनी का कहना है कि 290 पन्नों की यह पुस्तक सारे नागरिक तो पढ़ने से रहे। ये सभी बहुत व्यस्त जीवन जीने वाले लोग हैं। इसलिए कंपनी ने इन लोगों के लिए, अपने ग्राहकों के लिए पांच मिनट की एक फिल्म भी तैयार की है। उसे उम्मीद है कि लोग इसे देखकर शराब की खपत में कुछ न कुछ कमी जरूर करेंगे।

जैसा कि शुरू में बताया गया है शराब की यह सबसे बड़ी कंपनी नशाबंदी न सही, लेकिन कम पीने की अपील करके क्या अपने पैर पर खुद कुल्हाड़ी चलाना चाहती है? शायद नहीं। कंपनी ने यह सब धुंआधार प्रचार अपने पचास साल पूरे होने पर किया है। इन बड़े महंगे विज्ञापन के अंत में कंपनी अपने पीने वाले ग्राहकों को यह आश्वासन भी देती है कि इसके बाद वह अगले पचास साल तक उन्हें ऐसा कोई उपदेश दुबारा नहीं देने वाली! कंपनी अपनी शताब्दी मनाते समय इस अपील को फिर से दोहराए तो अलग बात। ❑

कविता

शराब कितनी खराब

❑ महावीर त्यागी

भारत के नर नारी सुन लो आगाह तुम्हें कराता हूं।
जिस जिस ने ये दारू पी है उनकी कथा सुनाता हूं।

दारू पी है जिस व्यक्ति ने ढूंढ़ा खोज नहीं पाया।
इज्जत और आबरू खोई लुटा दइ सारी माया।
शरीर रहा ना किसी काम का फिर भी होश नहीं आया।
पिटा गांव के बीच सभी ने कारण मैं बतलाता हूं।
जिस जिसने ये दारू पी है उनकी कथा सुनाता हूं।

दारू पीकर होश गँवाया छेड़ दइ थी एक लुगाई।
पहले जूते, चप्पल मारे शोर मचाकर दइ दुहाई।
लोग इकट्ठे हुए गली में, उसकी सबने करी पिटाई।
शराब खराब है प्यारे लोगों इसलिए तुम्हें समझाता हूं।
जिस जिसने ये दारू पी है उनकी कथा सुनाता हूं।

ज्यादा पीकर उल्टी कर दी तभी एक कुत्ता आया।
सबसे पहले मुँह चाटा, और पूंछ हिलाकर प्रेम दिखाया।
जाते समय उसी कुत्ते ने टांग उठाकर छिड़का लाया।
होश में आओ प्यारे भाइयों इसलिए तुम्हें चेताता हूं।
जिस जिसने ये दारू पी है उनकी कथा सुनाता हूं।

दारू पीकर इस दुनिया में, राजाओं के राज्य गये।
रोटी तक के लाले पड़ गये भिखमंगे से बना दिये।
रो पीटकर घर में बैठा सबसे मुंह छिपाता हूं।
जिस जिसने दारू पी है उनकी कथा सुनाता हूं।

देशवासियों बहनो, भाइयो पीना छोड़ दियो।
शराब की बोतल जहां मिले, उसे वहीं पर फोड़ दियो।
सत्कर्मों में जीवन अपना सब मिलकर जोड़ दियो।
गांधी विनोबा की शिक्षा को सबको याद दिलाता हूं।
जिस जिसने ये दारू पी है उनकी कथा सुनाता हूं।

भारत के नर-नारी सुन लो अगाह तुम्हें कराता हूं।
जिस जिसने ये दारू पी है उनकी कथा सुनाता हूं।

श्री त्यागी हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष ओर नशाबंदी परिषद् के महामंत्री हैं।

पर्यावरण

पर्यावरण से प्रतिद्वंद्विता

❑ ओ. पी. जोशी

भारत में पदभार ग्रहण कहने वाली एनडीए सरकार का रुख कमोवेश पर्यावरण की अनदेखी करता नजर आ रहा हैं पर्यावरणीय संवेदनशील इलाकों में जिस तेजी से निर्माण कार्य स्वीकृति दी जा रही है उससे लगता है कि भारत का वन एवं पर्यावरण मंत्रालय उद्योग मंत्रालय में परिवर्तित गया है और पर्यावरण को विकास के रास्ते पर रोड़ा मान रहा है। अभी पेरु के लीमा शहर में जलवायु सम्मेलन चल रहा है, जो कि सन् 2015 में पेरिस में होने वाले समझौते की रूपरेखा तैयार करेगा। ऐसे में हमारी जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। **–कार्य. सं.**

केन्द्र की नई सरकार में पर्यावरण की अनदेखी तो मंत्रिमंडल गठन से ही प्रारंभ हो गयी थी जब कोई पूर्णकालीन पर्यावरण व वन मंत्री नहीं बनाया गया। प्रकाश जावड़ेकर को वन व पर्यावरण मंत्रालय के साथ सूचना व प्रसारण दिया गया था। इसके बाद निर्धारित समय में सर्वोच्च न्यायालय में मंत्रालय ने उत्तराखंड की जलविद्युत परियोजनाओं से जैव विविधता पर पड़ रहे प्रभाव की रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की। यह रिपोर्ट 10 अक्टूबर 2014 को न्यायालय में प्रस्तुत की जानी थी। इस लेटलतीफी से नाराज होकर न्यायालय ने सरकार से कहा कि वह कुम्भकरण जैसा व्यवहार कर रही है।

पिछली यूपीए सरकार में पर्यावरण संबंधित काफी कठोर नियम कानून बनाये थे, जिससे कई उद्योगपति एवं औद्योगिक घराने नाराज थे। यह दलील दी जा रही थी कि कठोर नियम कानून से देश में पूंजी निवेश एवं आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। **ऐसा लगता है कि एनडीए की सरकार उद्योगपतियों एवं उद्योग घरानों के दबाव में आ गयी है एवं पर्यावरण सुरक्षा एवं सुपोषित विकास की बात छोड़कर नियम-कानून शिथिल या कमजोर करने का पुरजोर प्रयास कर रही है। वन व पर्यावरण मंत्रालय से परियोजना मंजूरी की समय-सीमा 105 दिनों से घटाकर 60 दिन कर दी गयी।** किसी भी परियोजना के पर्यावरणीय प्रभावों के अध्ययन हेतु यह समय सीमा काफी कम है। वैसे भी हमारे देश में तीन प्रकार के मौसम होते हैं एवं यदि तीनों मौसम में अध्ययन किया जाये तो कम से कम 300 दिन लगते हैं। मौसम के अनुसार तापमान, आर्द्रता, वायु गति व दिशा आदि बदलते रहते हैं। अतः 60 दिनों में पूरा अध्ययन संभव ही नहीं है।

परियोजना के पर्यावरणीय प्रभावों का अध्ययन भी परियोजना के कर्ताधर्ता द्वारा स्वयं की पसंदीदा कंपनी या एजेंसी द्वारा करवाये जाने के प्रस्ताव पर भी विचार जारी है। इसका परिणाम यह होगा कि परियोजना प्रबंध ऐसी एजेंसी या संस्था से अध्ययन करवायेंगे जिससे उनके अनुकूल रिपोर्ट दे। इससे भ्रष्टाचार बढ़ेगा एवं पर्यावरण का ज्यादा विनाश होगा। अभी तक मंत्रालय स्वयं अपने विषय विशेषज्ञों से अध्ययन करवाकर परियोजना की समीक्षा करता था। यह प्रस्ताव भी विचाराधीन है कि यदि किसी परियोजना की स्वीकृति के बाद दो माह में कोई संगठन या व्यक्ति उसका विरोध नहीं करता है तो यह मान लिया जायेगा कि इससे पर्यावरण को कोई हानि नहीं है। किसी भी परियोजना का विरोध विस्तृत रिपोर्ट के अध्ययन, संबंधित लोगों से चर्चा एवं कानूनविदों तथा वैज्ञानिकों की राय के बाद किया जाता है। इस पूरी प्राक्रिया में लम्बा समय लगता है अतः दो माह की अवधि काफी कम है। उदाहरणार्थ नर्मदा घाटी परियोजना जैसी विशाल परियोजना रिपोर्ट पढ़ने एवं समझने में ही लम्बा समय लग सकता है।

खनन, ताप विद्युत कारखानें, नदी घाटी एवं अधोसंरचना आदि से जुड़ी लगभग 350 से अधिक विचाराधीन परियोजनाओं में से ज्यादातर को सरकार जल्द से जल्द स्वीकृति देने हेतु प्रयासरत है। पिछली सरकार द्वारा रोकी गयी या अस्वीकृत परियोजनाओं को भी जैसे तैसे स्वीकृति दिये जाने के प्रयास भी जारी है। **राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों, संरक्षित वन क्षेत्र, वन्यजीव एवं संवेदनशील क्षेत्रों में या क्षेत्रों के आसपास बनने वाली टाउनशिप, इमारतों एवं पर्यटन रिपोर्ट आदि के मानकों को भी कमजोर किया जा रहा है।**

नई सरकार पर्यावरण बाबद बने कानूनों में फेरबदल हेतु भी प्रयासरत है। वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने पिछले अगस्त के अंत में पूर्व केबिनेट सचिव टी.एस.आर. सुब्रमण्यम के नेतृत्व में एक चार सदस्यीय समिति बनायी है, जो पांच कानूनों (वन्य संरक्षण 1972, जल प्रदूषण रोकथाम व नियंत्रण 1974, वनसंरक्षण 1980, वायु प्रदूषण रोकथाम व नियंत्रण 1981 तथा पर्यावरण संरक्षण 1986) की समीक्षा कर आवश्यक संशोधन प्रस्तुत करेगी। इस कानूनों के संदर्भ में लोगों से भी 1000 शब्दों के सुझाव मांगे गये हैं। कितने लोग सुझाव देंगे और उनमें से कितने माने जायेंगे यह तो भविष्य में पता चलेगा परंतु

यह लगभग निश्चित लगता है कि सरकार अपनी इच्छा अनुसार समिति से कानूनों में संशोधन करवा लेगी।

जैव विविधता से भरपूर छः राज्यों में फैले 1600 किमी क्षेत्र के पश्चिमी घाटों पर भी सरकार ने अभी तक अपना नजरिया स्पष्ट नहीं किया है। इन घाटों के संरक्षण बाबद सरकार का रवैया बदला नजर आ रहा है। सरकार प्रो. माधव गाडगिल एवं कस्तूरीरंजन समिति की रिपोर्ट एवं सुझावों पर भी ध्यान नहीं देने की मानसिकता बना रही है। इसके अतिरिक्त राज्यों को ज्यादा अधिकार देने पर विचार किया जा रहा है। अभी तक बड़ी आवासीय योजना, बहुमंजिले भवन, होटल, कॉलोनी, कारखाने व आय. टी. पार्क आदि की मंजूरी केन्द्र सरकार पर्यावरण संरक्षण कानून 1986 के तहत प्रदान करती थी। प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे भी प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर प्रो. गाडगिल के सुझावों को मानने हेतु कह चुके हैं। गौरतलब है संपूर्ण पश्चिमी घाट यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में शामिल है।

सरकार द्वारा पर्यावरण कानूनों में संशोधन एवं बदलाव किये जाने के विरोध में आवाजें उठना भी प्रारंभ हो गयी हैं। पर्यावरणविदों का कहना है कि सरकारें चाहें किसी भी दल की हों वे हाल के वर्षों में घटित केदारनाथ त्रासदी, मालिणी गांव धंसान (पुणे के पास) एवं कश्मीर में आयी भारी बाढ़ से कोई सबक नहीं लेना चाहती हैं। जल्दबाजी में पर्यावरण कानूनों में बदलाव उचित नहीं है एवं कई बार तो बदलाव के बहाने कानून कमजोर बना दिये जाते हैं।

कई उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि पर्यावरण संरक्षण में न्यायालयों ने सशक्त भूमिका निभाई है। अब कानूनों को कमजोर बनाकर यदि सरकार पर्यावरण विनाश की ओर बढ़ेगी तो न्यायालयों की जिम्मेदारी और भी बढ़ जायेगी। ❑

अपनी भूमि पर बेघर आदिवासी

❑ प्रशांत कुमार दुबे

मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले का सहरिया आदिवासी समुदाय देश का सर्वाधिक कुपोषित आदिवासी समुदाय है। लेकिन उसकी खेती की जमीनों पर गैर आदिवासियों ने अपना कब्जा जमा लिया। ऐसा तब हो रहा है जबकि उनका क्षेत्र संविधान की पांचवीं अनुसूची में आता है, जहां पर गैर आदिवासी उनकी जमीन की खरीद फरोख्त ही नहीं कर सकते। वैसे सरकारें भी गरीबों के हित में पहल करने से बचती रही है। **–कार्य. सं.**

मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले के कराहल ब्लॉक के मायापुर गांव की सामंधे आदिवासी (सहरिया) महिला पिछले दो दशक से अपनी 19 बीघा सिंचित जमीन पर कब्जा लेने की लड़ाई लड़ रही हैं। इस प्रक्रिया में वह कई बार पटवारी, तहसीलदार, कलेक्टर कार्यालय जा चुकी हैं। अनेक जनसुनवाइयों में उनका आवेदन लगा है। सरकारी तंत्र से आस टूटी तो एकता परिषद जैसे जनसंगठन के साथ मिलकर लड़ाई शुरू की। उन्होंने जनादेश 2007 में भी भाग ले लिया है। दिल्ली के जंतर-मंतर, आगरा और ग्वालियर आदि तक स्थानों पर जा चुकी हैं। भू-अधिकारों के लिए ऐतिहासिक जन सत्याग्रह 2012 में भी गयीं। परंतु उनकी अपनी लड़ाई अभी जारी है।

सामंधे के पति बद्री यह लड़ाई लड़ते-लड़ते चल बसे। उनके तीन बेटे हैं। एक विकलांग है और दो बच्चे काम और मजदूरी के अभाव में गांव छोड़कर जयपुर पलायन पर गये हैं। गरीबी की इस चरम स्थिति में भी उनके पास राशन कार्ड नहीं है। पहले था, लेकिन बाद में वह भी छीन लिया गया। गांव में काम नहीं मिलता, जॉब कार्ड कोरे पड़े हैं। अतः उन्हें कभी जंगल से लकड़ी लाकर बेचना पड़ता है तो कभी नदी के पत्थर तोड़ने पड़ते हैं। एक ट्राली पत्थर तोड़ने पर 300 रुपये मिलते हैं और इतना काम 7 दिनों में हो पाता है।

यह कहानी अकेली सामंधे की नहीं है बल्कि इस गांव के 45 आदिवासी परिवारों के पास उनकी अपनी ही जमीन के कब्जे नहीं है। आज उनकी जमीनों पर या तो पंजाब से आये सरदारों ने कब्जा कर लिया या फिर श्योपुर के रसूखदारों ने। ज्ञात हो कि आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासी की जमीन किसी दूसरे के नाम पर स्थानांतरित नहीं हो सकती है पर यह सब कैसे हो गया और होता जा रहा है, यह समझ से परे है?

सहरिया एक आदिम जनजाति समुदाय है जो कि देश की 75 संकटग्रस्त प्रजातियों में से एक है। इंटरनेशनल फूट पालिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट (इफ्री) की मानें तो इस समुदाय में खाद्य सुरक्षा की गंभीर स्थितियां हैं और इनके बच्चों में पाया जाने वाला कुपोषण इथोपिया और चाड जैसे अफ्रीकी देशों से भी ज्यादा खतरनाक है। यदि इस समुदाय के साथ भू-सुधारों की पहल होती है तो निश्चित रूप से यह इन्हें भूख की स्थिति से भी निजात दिला सकता है। पर पिछले लंबे समय से चल रही

इस राजनीतिक लड़ाई को अभी तक वास्तविक धरातल नहीं मिल पाया है। वैसे भी राजनीति संसाधनों के समान बंटवारे पर या तो मौन रहती है या फिर अपनी मुखर प्रतिक्रिया नहीं देती, क्योंकि उसके तार भी सामंतवाद से गहरे से जुड़े रहते हैं। सरकारें भी गरीब समुदायों के सिर्फ वोट चाहती हैं।

महात्मा गांधी के अनुयायी विनोबा भावे के नेतृत्व में सन् 1951 में जन्मे भूदान आंदोलन ने पहले अमीरों को, भूस्वामियों को स्वमेव प्रेरित किया बाद में यह भूदान अधिनियम बन गया। इस अधिनियम के अंतर्गत सरकार को भूमि बैंक से भूमि का वितरण करना था। तिरसठ बरस पूरे कर चुके आंदोलन के अंतर्गत पिछले छः दशकों में सरकार ने 9,71,000 हेक्टेयर जमीन भूमिहीनों में बांटी है। मध्य प्रदेश में 4.10 लाख एकड़ जमीन दान में आयी थी और उसमें से 2.37 लाख एकड़ जमीन का ही वितरण हुआ, बाकी की 1.7 लाख एकड़ जमीन नहीं बंटी, पर चम्बर घाटी, सामंधे और मायापुर जैसे प्रकरण बताते हैं कि जो जमीन बंटी भी वह जमीन उन्हें मिली ही नहीं जो इसके हकदार थे बल्कि जमीन तो दबंगों ने हथिया ली। सरकार के पास वर्तमान में इस भूमि से संबंधित कोई लिखित जानकारी नहीं है। ऐसी स्थिति में यह इतनी आसान प्रक्रिया नहीं है और इसके लिए संघर्ष जारी रखना होगा।

भूमि सुधारों पर दोनों ही सरकारों (केन्द्र एवं राज्य) ने अपने-अपने तरीके से लोगों को बरगलाया है। जब लगभग दो वर्ष पहले मध्य प्रदेश से निकल 50 हजार पदयात्री जन-सत्याग्रह अभियान के तहत दिल्ली की ओर कूच कर रहे थे तब शिवराज सरकार ने उनकी मंशा भांपी और स्वयं मुख्यमंत्री ने यात्रा में पहुंचकर कहा कि मध्य प्रदेश जो कर सकता है और उसके दायरे में जो अधिकार हैं, वह किया जायेगा। उस समय खूब तालियां बजी लेकिन वायदे यकीन में नहीं बदल पाये और नतीजा फिर वहीं ढाक के तीन पात...। सामंधे भी उस यात्रा में थीं और आज भी भटक रही हैं। इसी प्रकार केन्द्र ने कहा था कि वह भूमि सुधार नीति घोषित करेगी। यह नीति तो बनकर तैयार है पर सरकारी लेटलतीफी और व्यापक सुधारों की अनदेखी इस पर भी हावी रही। देखते-देखते 15वीं लोकसभा का अंतिम सत्र भी समाप्त हो गया पर वह भी व्यापक भूमि सुधारों की दिशा में कुछ नहीं कर पाया।

मध्य प्रदेश सरकार भी अपने तईं यह कर सकती थी कि केन्द्र के राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति के मसौदे की तरह राज्य भूमि सुधार नीति बनाती और उसे लागू करती तथा अपनी ओर से पहल करते हुए वंचित वर्गों की जमीनों पर हुए अवैध कब्जों की पहचान करतीं और उन्हें कब्जे से छुड़ाती। पर ऐसा नहीं हुआ। श्योपुर जिले के श्योपुर, कराहल और विजयपुर ब्लॉक के 239 गांवों में 1024 हेक्टेयर जमीन दबंगों के कब्जे में है। इससे पूरे प्रदेश में ही भयावह स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। एक अनुमान के मुताबिक केवल ग्वालियर चम्बल संभाग में ही आदिवासियों और दलितों की 20 हजार बीघा जमीन दबंगों के कब्जे में है।

आदिवासियों ने एकता परिषद के ही आनुशंगिक संगठन महात्मा गांधी सेवा आश्रम के साथ मिलकर 2007 से लड़ाई लड़नी शुरू की और बाद में 35 लोगों को नोटिस हो पाया लेकिन उनमें से अधिकांश के मौके कब्जे शेष हैं। सामंधे और बाकी अन्य गांव वालों के सामने तो करो या मरो की स्थिति ही निर्मित हो गयी है। शासन व्यवस्था की नाकामी पर सामंधे कहती हैं कि सरकार से तो कोई आस नहीं है अब तो आस बस आंदोलन से ही बची है। ❑

संपादक के नाम पत्र

श्रीयुत संपादक जी,

विनम्र निवेदन है कि मैं 'सर्वोदय जगत' का नियमित पाठक हूं। इसके अलावा स्थानीय स्तर पर जिले में कई बार आंदोलन/सत्याग्रह करके आमजन के हित में अनेक कार्य जिला प्रशासन से कराये गये हैं— श्मशान घाट सोता बहादुर में विद्युत शवदाह निर्माण, ग्राम हरसिंहपुर कायस्थ परगना व तहसील अमृतपुर में 62 भूमिहीनों को पट्टे, गंगा प्रदूषण मुक्ति हेतु अनेक बार स्वच्छता अभियान, मतदाता परिचय-पत्र, राशन कार्ड एवं आधार कार्ड बनवाये जाने हेतु शिविर लगाने जैसे रचनात्मक कार्य शामिल है।

अब मैं अपनी व्यक्तिगत पीड़ा से अवगत करा रहा हूं। सर्वोदय जगत पत्रिका में प्रकाशित लेखों एवं विचारों को पढ़ता हूं तो एहसास होता है कि गांधी-दर्शन विचारों और सिद्धांतों के प्रति देश में अनेक व्यक्ति कलम के तो बहुत धनी हैं, परंतु पत्रिका में ऐसा कुछ भी पढ़ने को नहीं मिलता जिससे साबित हो कि हम सब समाज व देश की किसी गंभीर समस्या जैसे अंधाधुंध बढ़ती जनसंख्या, देर से मिलता न्याय, घटती कृषि भूमि, नीचे गिरता भू-जल स्तर, कटते जंगल, बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण, कम होते प्राकृतिक संसाधनों आदि के निस्तारण हेतु सर्वोदयी जन शांतिपूर्ण, अहिंसात्मक ढंग से आंदोलन, क्रमिक उपवास या सत्याग्रह आदि माध्यमों से कोई रचनात्मक कार्य भी कर रहे हों, जिसकी आज के परिवेश में महती जरूरत है। हम सब गांधीजनों को अब रचनात्मक कार्य करने की आवश्यकता है, जिससे समाज का ध्यान गांधी-विचार व सिद्धांतों के प्रति आकृष्ट हो और लोग आंदोलन से जुड़ें।

–लक्ष्मण सिंह, फर्रूखाबाद

आपका धन्यवाद कि आप कई रचनात्मक कार्यों से जुड़े हुए हैं और आपके सुझाव भी महत्त्वपूर्ण हैं। आशा है कि भविष्य में आपके द्वारा किये गये रचनात्मक कार्यों की रपट 'सर्वोदय जगत' को भी उपलब्ध करायेंगे ताकि अन्य साथी भी प्रेरित हो सकें। **–कार्य. सं.**

गतिविधियां एवं समाचार

महिला शांति सेना शिविर सम्पन्न

शांति सेना के राष्ट्रीय संयोजक डॉ. रामजी सिंह की चिरप्रतीक्षित इच्छा के अनुरूप राजस्थान के जयपुर जिले के भानपुर कलां गांव में ग्राम भारती समिति तथा राजस्थान प्रदेश सर्वोदय मंडल की तरफ से 24-25 अप्रैल, 2015 को आयोजित दो दिवसीय महिला शांति सेना का शिविर सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। शिविर के मुख्य अतिथि पूर्व सांसद तथा जैन विश्व भारती के पूर्व उपकुलपति डॉ. रामजी सिंह ने शिविर का उद्घाटन करते हुए कहा कि हिंसा से ग्रस्त समूची दुनिया को आज शांति की सबसे ज्यादा आवश्यकता है और इसके लिए विश्व की दृष्टि गांधी दर्शन की तरफ है। गांधीजी ने महिला शक्ति में पूर्ण विश्वास व्यक्त करते हुए उन्हें शांति का प्रतीक माना था। इसलिए हिंसा पीड़ित समाज, देश और दुनिया को महिला शांति सेना की आवश्यकता है।

शिविर की अध्यक्षता कर रहीं प्रदेश सर्वोदय मंडल की अध्यक्ष आशा बोथरा ने कहा कि आज महिलाओं को अशिक्षा, पर्दा, भ्रूण हत्या, दहेज आदि कुप्रथाओं से मुक्ति चाहिए। इन सामाजिक बुराइयों से मुक्त महिलाएं समाज, देश और दुनिया को नई दिशा दे सकती हैं। आशा बोथरा ने महिला शांति सेना का अगला शिविर शीघ्र ही जोधपुर में आयोजित करने की घोषणा की।

सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री विजय कुमार ने शांति सेना की पृष्ठभूमि की जानकारी देते हुए कहा कि गांधी, विनोबा, जेपी, आचार्य राममूर्ति तथा नारायण देसाई जैसे विचारकों ने समाज में महिला शांति सेना के महत्त्व तथा शांति स्थापना में उनके योगदान को वर्षों पूर्व रेखांकित किया था, वह आज भी समीचीन है।

प्रारम्भ में सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय प्रवक्ता भवानी शंकर कुसुम ने शिविर के उद्देश्यों के बारे में बोलते हुए कहा कि महिलाओं की सामाजिक परिवर्तन में हमेशा ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, इसलिए गांधीजी ने आजादी की लड़ाई में सदैव महिलाओं को आगे रखा। आज देश और दुनिया में फैल रही हिंसा के शमन के लिए महिला शांति सेना की आवश्यकता है। और, यह कार्य राजस्थान से शुरू करने का निश्चय किया गया है। आगामी एक वर्ष में समूचे प्रदेश में महिला शांति सेना की इकाइयां गठित की जायेंगी।

शिविर का समापन करते हुए राजस्थान महिला आयोग की पूर्व अध्यक्ष प्रो. लाड कुमारी जैन ने कहा कि महिला जिस तरह पूरे परिवार की जिम्मेदारी बखूबी निभाती है, उसी तरह वह समाज और पूरे देश के प्रति भी निष्ठावान रहते हुए शांति स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

शिविर संयोजक श्रीमती कुसुम जैन ने शिविरार्थी महिलाओं को महिला शांति सेना के महत्त्व के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि उनको जयपुर में ही नहीं संपूर्ण राजस्थान में महिला शांति सेना का मजबूत संगठन बनाकर पूरे देश में मिसाल कायम करनी है।

शिविर के अंतिम सत्र में महिला प्रतिभागियों से जयपुर में महिला शांति सेना की इकाई गठित करने के बारे में राय पूछे जाने पर सभी ने हर्ष के साथ सहमति व्यक्त की। इस पर समूह चर्चा में निर्णय के आधार पर सर्वसम्मति से श्रीमती राजू देवी योगी, जयपुर जिला महिला शांति सेना की संयोजक तथा श्रीमती ननछी, श्रीमती गीता तथा पतासी देवी को सदस्य बनाया गया। यह इकाई शीघ्र ही सदस्यता अभियान चलाकर संगठन को मजबूत बनायेगी।

शिविर आयोजन में सामुदायिक सहयोग की चर्चा करते हुए श्रीमती सरिता योगी ने बताया कि श्री छीतरमल कुमावत ने शिविरार्थियों के भोजन की व्यवस्था तथा श्री राकेश मीणा ने सामुदायिक भवन में आठ पंखे लगवाकर महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इस पर सभी ने उनका आभार व्यक्त किया।

शिविर में सरिता योगी, राकेश मीणा, छीतरमल कुमावत, रामचन्द्र सैनी तथा सरपंच रामसहाय कांकरेलिया ने भी अपने विचार व्यक्त किये। शिविर का संचालन विजय कुमार ने किया। शिविर में 18 गांवों की 85 महिलाओं ने भाग लिया।

–भवानी शंकर कुसुम

कविता

लौटा दो उनका उनके पास

■ उदय प्रकाश

पानी तो नदियों को लौटा ही देना चाहिए
और ठीक हिसाब लगाकर
कुछ कुओं और तालाबों को भी

आखिर में अगर फिर भी कुछ तलछट बचा रह जाए
तो हमारे गांव के अंधे राम गरीब नापित
उस सत्तर साल आठ महीने के लोटे में
उसे डाल दिया जाय
उसका लोटा भरने की फुरसत अब
किसी को नहीं है गांव में

बादल लौटाए जाने चाहिए आसमान को जरूरत भर
इसमें कोई खास मुश्किल नहीं होनी चाहिए
इस काम में अभी तक का कोई कानून आड़े नहीं आता
बस हममें जरा-सा संयम, कंजूसी और
समझदारी की दरकार है

जिनके घर, इस बीच जब से ये नया दौर आया है
छीन लिये गये हैं बैंकों, कंपनियों और सरकारों द्वारा
जल्द से जल्द मानसून आने के पहले
उन्हें वापस कर दिये जायं तो बहुत अच्छा होगा
उनके बच्चे भीगेंगे नहीं उनकी रोटियां गीली नहीं होंगी

जंगल दे देने चाहिए जंगलियों और
आदिवासियों को वापस
दुनिया भर के पढ़े-लिखे शहरातुओं की भी
अब यही राय ठहरी है
बाद में उसमें बंदर, मोर, पेड़, चिड़ियां-शेर, तितलियां
वगैरह अपने आप ही जायेंगे
वो कुदरत जो घास उगाती है वही सबकुछ
बना डालती है एक दिन

मेरी छोटी समझ के अनुसार
कविता लौटा ही देनी चाहिए कवि को वापस चुपचाप
हालांकि उसे खोजना होगा बहुत वह घुमा-बैठा देगा
कहीं किसी दीवार के पीछे
डरा हुआ जमाने से

इसमें कोई बड़ा जलसा करने की जरूरत नहीं है
अफसरों, हाकिमों, मुसाहिबों से कहना चाहिए
वे अपनी थैलियां समेटें कार स्टार्ट करें और
अपनी-अपनी ड्यूटी पर वापस जायें

देश की कानून-व्यवस्था की हालत
इन दिनों ठीक नहीं है
वैसे भी आज के अंग्रेजी राज में हिन्दी को
गुजरात या नंदीग्राम बनाकर
इतना गदर मचाने की कौन-सी सलाहियत

धर्म को वापस पाने के लिए
तमाम दुनिया भर के गरीब बदहाल होकर
जाने कितने सालों से बैठे हैं
सीढ़ियों पर भिखमंगों की तरह उदास
उनके कटोरे में डाल दो उसे वापस
वे चले जायेंगे अपने-अपने परलोक में तुम्हें दुआएं देते

खेत फौरन दे देने चाहिए उन्हें जो हर रोज इन दिनों
फतिंगों की तरह जान दे रहे हैं नाहक
खाना उसे जो भूखा है
दवाइयां उस बीमार को
जिसके पास अस्पताल की ओर ताकने तक
न ताकत है न सिक्के

जहां तक मेरा सवाल है तो धन्यवाद
बस आप मेरे कपड़े-लत्ते ही लौटा दें
तो गनीमत

डॉ. सुशीला पुरी की फेसबुक वाल से साभार

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1450

वातायन
0612-2222920